श्रीसुदर्शनशतकम्

श्रीसुदर्शनशतकमन्त्राराधनविधिः
षडक्षरजपविधिः

ॐ अस्य श्रीसुदर्शनमहामन्त्रस्य अहिर्बुध्न्यो
भगवानृषिरनुष्टुप्छन्दः, श्रीसुदर्शनचक्रराजो भगवान्
देवता । क्षौं महाज्वालाय बीजम् । क्लीं शत्रुमर्दनाय शक्तिः, क्लीं
सर्वभयनिवारणाय कीलकम्, श्रीभगवत्कैङ्कर्ये बाधानिवृत्ति-
पूर्वकमविच्छिन्नसन्तानेन विवृध्यर्थं
षट्कोणमध्यस्थितविष्णुचक्र- मन्त्रजपे विनियोगः ।

अथाङ्गन्यासः
ॐ सं र्मूध्न, ॐ हं भ्रूमध्ये, ॐ स्रां मुखे, ॐ रं हृदि,
ॐ हुं नाभौ, ॐ फट् जान्वोः सहस्रार हुं फट् इति मन्त्रः ।
अथ करन्यासः
ॐ रां रणत्किङ्किणीजालाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
रीं रिपुदावानलाय तर्जनीभ्यां नमः ।
रूं राक्षसभयनिवारणाय मध्यमाभ्यां नमः ।
रैं रक्षोत्सादनाय अनामिकाभ्यां नमः ।
रौं रणभीषणाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
रः रक्तमाल्याम्बरधराय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

अथ हृयादिन्यासः
रां राक्षसविध्वंसकाय हृदयाय नमः ।
रीं रक्ताक्षाय शिरसे स्वाहा ।
रूं रुद्रभीषणाय शिषायै वषट् ।
रैं राक्षसकुलनाशनाय कवचाय हुम् ।
रौं रमेशप्रियाय नेत्राभ्यां वषट् ।
रः रक्तमाल्याम्बरधराय अस्त्राय फट् ॥

अथ पञ्चोपचारपूजनम्
ॐ लं पृथिव्यात्मने बाणासुरमदभञ्जनाय श्रीचन्दनं समर्पयामि ॥ १॥

ॐ हं आकाशात्मने दैत्यदानवमर्दनाय पारिजातपुष्पं समर्पयामि ॥ २॥

ॐ यं वाय्वात्मने दुर्वासोगर्वखण्डनाय
सुगन्धदशाङ्गधूपं समर्पयामि ॥ ३॥

ॐ रं, ब्रह्मात्मने वैकुण्ठनिवासाय भक्ष्यभोज्य-लेह्य-चोष्य-
गुड-घृत-दधिक्षीरादिशुभ्रशाल्योदनमोदकाद्यनेकपक्वान्न,
कन्दमूल-फलाद्यनेक-चित्रान्न, पायसनिर्मलस्वादु-
विरजाजलसंयुक्त श्रीरमाहस्तनिर्मितमणिमयपात्रस्थित
श्रीमहाविष्णुनिवेदितमहाप्रसादामृतान्नं समर्पयामि ॥ ४॥

ॐ जं, सोमात्मने पूगीफलनागवल्लीदलैलालवङ्गकङ्कोलजाती-
फलाद्यनेकशतौषधिसहितानेकसुगन्धपरिमलद्रव्यजातीपत्र-
कस्तूरीकर्पूर गोरोचन मौक्तिक चूर्णमिश्रित
लक्ष्मीहस्तनिर्मितस्वर्णपात्रस्थित श्रीधरचर्वणशेषवीटिकां
समर्पयामि ॥ ५॥

॥ इति पञ्चोपचारपूजनम् ॥

अथ दशदिग्बन्धनं
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय ऐन्द्रीं दिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्रायाग्नेयीं दिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय दक्षिणां दिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय नैरृतीं दिशं चक्रेण बध्नामि ।

ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय वारुणीं दिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय वायव्यदिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय कौवेरीं दिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय ईशानदिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय ऊर्ध्वदिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय अधोदिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते कोटिसूर्यप्रकाशाय भूर्भुवःस्वरोमिति
सर्वदिग्बन्धनं कुर्यात् ॥ सहस्रार हुं फट् इति षडक्षरमष्टोत्तर-
शतवारं जपेत् ॥

॥ षड्लक्षात्मकःपुरश्चरणः ॥

॥ सुदर्शनाय विद्महे हेतिराजाय धीमहि तन्नश्चक्रः प्रचोदयात् ॥

॥ इति सुदर्शनगायत्रीमन्त्रः ॥

ध्यानम् -
शङ्खञ्चक्रं च चापं परशुमसिमिषुं शूलपाशाङ्कुशांश्च,
विभ्राणं वज्रखेटं हलमुसलगदाकुन्तमत्युग्रदंष्ट्रम् ।
ज्वालाकेशं त्रिनेत्रं ज्वलदनलनिभं हारकेयूरभूषं,
ध्यायेत्षट्कोणसंस्थं सकलरिपुकुलप्राणसंहारचक्रम् ॥ १॥

सुदर्शन महाज्वाल कोटिसूर्यसमप्रभ ।
अज्ञानान्धस्य मे देव विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ॥ २॥

यस्य श्रवणमात्रेण विद्रवन्ति सुरारयः ।
सहस्रार नमस्तुभ्यं विष्णुपाणितलाश्रय ॥ ३॥

क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालातिभीषणम् ।
सर्वरोगप्रशमनं कुरु देववराच्युत ॥ ४॥

सुदर्शन महाचक्र गोविन्दस्य करायुध ।
तीक्ष्णधार महावेग सूर्यकोटिसमप्रभ ॥ ५॥

त्रैलोक्यं रक्ष रक्ष त्वं दुष्टदानवमर्दन ।
सुदर्शन महाज्वाल छिन्धि छिन्धि महागदम् ॥ ६॥

छिन्धि वातं च पित्तं च छिन्धि घोरं महाविषम् ।
रुजं दाहं च शूलं च निमिषं जालगर्दभम् ॥ ७॥

ये च केचिन्महोपेता कार्यविघ्नकराश्च नः ।
सुदर्शनस्य मन्त्रेण ग्रहा यान्तु दिशो दश ॥ ८॥

॥ इति सुदर्शनाराधनविधिः ॥

अथ श्रीसुदर्शनशतकम् ।
श्रीमत्सुदर्शनभगवते नमः
सौदर्शन्युज्जिहाना दिशि विदिशि तिरस्कृत्य सावित्रमर्चि-
र्बाह्याबाह्यान्धकारक्षतजगदगदङ्कारभूम्ना स्वधाम्ना ।
दोःखर्जूदूरगर्जद्विबुधरिपुवधूकण्ठवैकल्यकल्या
ज्वाला जाज्वल्यमाना वितरतु भवतां वीप्सयाऽभीप्सितानि ॥ १॥

(अर्थ - जो प्राणियों के मन के बाहर रहने वाले, विषयवासना की प्रवृत्ति रूप, तथा अन्दर के भी अज्ञान, अन्यथा ज्ञान, विपरीत ज्ञान स्वरूप अन्धकार से पीडित संसार को स्वस्थ करने वाले अपने प्रभावशाली तेज द्वारा सूर्य के तेज को तिरस्कृत करके प्रत्येक दिशा में उदय प्राप्त करती है । एवं जो दैत्य, दानव, युद्ध की इच्छा से अपनी भुजां में उठी हुई खुजलाहट के कारण सिंहनाद करते रहते हैं, उन्हें मारकर और उनकी स्त्रियों को

बिधवा बनाकर कण्ठसूत्र आदि आभरणों से शून्य करके जो उनको,
अमङ्गल स्वरूप प्रदान कर देती है । वह सर्वदा प्रकाशमान
रहने वाली श्रीसुदर्शन भगवान् की ज्वाला आपके अभीष्ट को बार-बार
सम्पन्न करें ॥ १॥)

प्रत्युद्यातं मयूखैर्नभसि दिनकृतः प्राप्तसेवं प्रभाभि-
र्भूमौ सौमेरवीभिर्दिवि वरिवसितं दीप्तिभिर्देवधाम्नाम् ।
भुयस्यै भूतये वः स्फुरतु सकलदिग्भ्रान्तसान्द्रस्फुलिङ्गं
चाक्रं जाग्रत्प्रतापं त्रिभुवनविजयव्यग्रमुग्रं महस्तत् ॥ २॥

(अर्थ - सुमेरु पर्वत अपनी प्रभा द्वारा भूलोक में जिसकी सेवा
करता रहता है और आकाश मण्डल मे सूर्य की किरणों द्वारा जिसका
स्वागत किया जाता है । इसी तरह स्वर्गलोक में भी देवताओं के भव्य
सुवर्णमय भवनों की दिव्य कान्ति से जिसका पूजन किया जाता है ।
समस्त दिशायें जिसके तेजस्वी स्फुलिङ्ग से व्याप्त रहती हैं ।
और जो स्वयं तीनों लोक के विजय के लिये सर्वदा सतर्क रहता है ।
इस प्रकार अत्यन्त प्रतापवान और भयङ्कर श्रीसुदर्शनचक्र का
वह दिव्य तेज आपके लिये अधिक से अधिक ऐश्वर्य प्रदान करे ॥ २॥)

पूर्णे पूरैः सुधानां सुमहति लसतस्सोमबिम्बालवाले-
बाहाशाखावरुद्धक्षितिगगनदिवश्चक्रराजद्रुमस्य ।
ज्योतिश्छद्मा प्रवालः प्रकटितसुमनस्सम्पदुत्तंसलक्ष्मीं
पुष्णन्नाशामुखेषु प्रदिशतु भवतां सप्रकर्षं प्रहर्षम् ॥ ३॥

(अर्थ - अमृत रस से परिपूर्ण चन्द्रमण्डलरूप आलवाल थाले
में विराजमान तथा अपनी भुजारूप शाखां से, पृथिवी आकाश
एवं स्वर्ग को आच्छादित करने वाले श्रीचक्रराजरूप कल्पवृक्ष
के ज्योतिः स्वरूप पत्ते जो सुमनपुष्प के सदृश सत्परिषद द्वारा
विकसित रहते हैं । वे कान्ता रूप दिशां के मुखमण्डल पर अलङ्कार
की शोभा सम्पादन करते हु आप सबके लिये विशेष रूप से प्रमोद
प्रादान करेम् ॥ ३॥)

आरादारात्सहस्राद्विसरति विमतक्षेपदक्षाद्यदक्षा-
न्नाभेर्भास्वत्सनाभेर्निजविभवपरिच्छिन्नभूमेश्च नेमेः ।
आम्नायैरेककण्ठैः स्तुतमहिम महो माधवीयस्य हेते-
स्तद्वो दिक्ष्वेधमानं चतसृषु चतुरः पुष्यतात्पूरुषार्थान् ॥ ४॥

(अर्थ - सहस्रों आरों से तथा शत्रुसंहार मे प्रवीण अक्ष द्वारा और
सूर्य के सदृश तेज वाली नाभी से एवं अपने विभव से भू-मण्डल
को मापने वाली नेमी द्वारा निकला हुआ सर्वत्र व्यापनशील तेज जिनके
महत्त्व का वर्णन चारों वेद सर्वदा एक स्वर से करते रहते हैं ।
चारों दिशां में वृद्धशील भगवान् के चक्र का वह तेज आप सब
के धर्म आदि चारों पुरुषार्थों का पोषण करे ॥ ४॥)

श्यामं धामप्रसृत्या क्वचन भगवतः क्वापि बभ्रु प्रकृत्या
शुभ्रं शेषस्य भाषा क्वचन मणिरुचा क्वापि तस्यैव रक्तम् ।
नीलं श्रीनेत्रकान्त्या क्वचिदपि मिथुनस्यादिमस्येव चित्रं
व्याप्तन्वानं वितानश्रियमुपचिनुताच्छर्म वश्चक्रभानम् ॥ ५॥

(अर्थ - श्रीसुदर्शन का जो तेज, श्रीभगवान् के श्याम विग्रह के
सम्बन्ध से किसी प्रदेश में तो श्याम रङ्ग का भासित होता है,
और कहीं पर अपनी स्वाभाविक कान्ति से पीत वर्ण का । इसी प्रकार
कहीं-कहीं श्रीशेष भगवान् की धवल कान्ति के संसर्ग से शुभ्र
वर्ण का और किसी किसी स्थल पर तो उन्हें शेष जी की मणियों की
चमकाहट से रक्त वर्ण का ज्ञात होता है । एवं किसी प्रदेश पर,
श्रीदेवी के दिव्य नील कमल सदृश नेत्र की कान्ति से उसकी नील वर्ण
की छटा मलूम पडती है । इस प्रकार आदि कालीन दिव्य दम्पति भगवान्
श्रीलक्ष्मीनारायण के लिये विचित्र रङ्ग के मण्डप की चाँदनी की
शोभा को प्रवृद्ध करता हुआ श्रीचक्रराज का वह प्रकृष्ट तेज

आपकी सुख परम्परा को प्रचुर मात्रा में बढावें ॥ ५॥)

शंसन्त्युन्मेषमुच्छोषितपरमहसो भास्वतः कैटभारे-
रिन्धे सन्ध्येव नक्तञ्चरविलयकरी या जगद्वन्दनीया ।
बन्धूकच्छायबन्धुच्छविघटितघनच्छेदमेदस्विनी सा
राथाङ्गी रश्मिभङ्गी प्रणुदतु भवतां प्रत्यहोत्थानमेनः ॥ ६॥

(अर्थ - अन्य के तेज के शोषक जो श्रीसूर्यदेव उनके उदय के समान भगवान् की विचित्र शक्ति के उदय को प्रकाशित करने वाली, राक्षसों का संहार करने वाली तथा सन्ध्या के सदृश समस्त जगत् की वन्दनीय श्रीसुदर्शन चक्र की ज्वाला जो कुसुम की कान्ति वाले मेघ मण्डल के संसर्ग से प्रचुर मात्रा में सुशोभित होती है । वह आपके प्रत्येक दिन के अर्जित पाप को शमन करदे ॥ ६॥)

साम्यं धूम्याप्रवृद्ध्या प्रकटयति नभस्तारकाजालकानि
स्फौलिङ्गीं यान्ति कान्तिं दिशति यदुदये मेरुरङ्गारशङ्काम् ।
अग्निर्मग्नार्चिरैक्यं भजति दिननिशावल्लभौ दुर्लभाभौ
ज्वालावर्ताविव स्तः प्रहरणपतिजं धाम वस्तद्धिनोतु ॥ ७॥

(अर्थ - जिस ज्वाला चक्र के तेज के उदय होने पर आकाश धूम मण्डल के सदृश प्रतीत होता है और नक्षत्र गण स्फुलिङ्ग चिनगारी जैसे । सुमेरु पर्वत अङ्गार के समान जान पडता है, तथा अग्नि का तेज उसी ज्वाला के तेज में विलीन हो जाता है । चन्द्र एवं सूर्य भी हतप्रभ होकर ज्वाला के आवर्त भँवर जैसे प्रतीत होते हैं । इस प्रकार का सुदर्शन का दिव्य तेज आपको सुखी करे ॥ ७॥

दृष्टेऽधिव्योमचक्रे विकचनवजपासन्निकाशे सकाशं
स्वर्भानुर्भानुरेष स्फुटमिति कलयन्नागतो वेगतोऽस्य ।
निष्टप्तो यैर्निवृत्तो विधुमिव सहसा स्प्रष्टुमद्यापि नेष्टे
घर्मांशुं ते घटन्तामहितविहतये भानवो भास्वरा वः ॥ ८॥

(अर्थ - किसी समय आकाशमण्डल से फुल्लित जपा-पुष्प के सदृश श्रीचक्रराजको देखकर राहु उन्हें सूर्य समझकर अतिशय वेग पूर्वक निगल जानें के लिं दौड पडा, परन्तु उनकी प्रतप्त किरणों से सन्तप्त होकर लौट आया । उस समय से वह सूर्यदेव को सहसा स्पर्श करनें का साहस नहीं करता । जैसा कि चन्द्रमा को किया करता है । इस प्रकार श्रीसुदर्शन चक्र की भास्वर किरणें आपके शत्रु वर्ग का विनाश करती रहें ॥ ८॥)

देवं हेमाद्रितुङ्गं पृथुभुजशिखरं बिभ्रतीं मध्यदेशे
नाभिद्वीपाभिरामामरविपिनवतीं शेषशीर्षासनस्थाम् ।
नेमिं पर्यायभूमिं दिनकरकिरणादृष्टसीमःपरीत्य
प्रीत्यै वश्चक्रवालाचल इव विलसन्नस्तु दिव्यास्त्ररश्मिः ॥ ९॥

(अर्थ - मांसल भुजदण्ड के सदृश शिखर वाले सुमेरु पर्वत के समान अत्यन्त उन्नत श्रीसुदर्शनदेव को जो अपनें मध्यप्रदेश में धारण करती हैं । और जिनकी नाभि अन्तरीप के सदृश सुशोभित होती है, अर-समूह ही जिसमें सघन वन है, तथा जो श्रीशेष के फण पर विराजमान एक दूसरी पृथिवी की तरह मलूम पडती है उस नेमि को सभी ओर से व्याप्त करके तथा जहाँ सूर्य की भी किरणें नहीं पहुँच पातीं उस लोकालोक पर्वत के समान शोभित चक्रराज की किरणें आपको सुख प्रदान करें ॥ ९॥)

एकं लोकस्य चक्षुर्द्विविधमपनुदत्कर्म नम्रत्रिनेत्रं
दात्रर्थानां चतुर्णां गमयदरिगणं पञ्चतां षड्गुणाढ्यम् ।
सप्तार्चिःशोषिताष्टापदनवकिरणश्रेणिरज्यद्दशाशं
पर्यस्याद्वः शताङ्गावयवपरिवृढज्योतिरीतीः सहस्रम् ॥ १०॥

(अर्थ - जो विश्व के मार्ग प्रदर्शन करने में, नेत्र के समान

प्रधान हैं और जिससे शुभ और अशुभ कर्म विनष्ट हो जाते हैं । जो त्रिनेत्र शङ्करजी से सुसेवित होकर, उपासकों को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्रदान करती तथा वीर्य और तेज इन षड्गुणों से सम्पन्न है । जो अग्नि में प्रतप्त सुवर्ण के सदृश, अभिनव किरण समूह से दशों दिशां को लाल रङ्ग में रँगती रहती है, वह सुदर्शन चक्र की दिव्य ज्योति आपकी सहस्रों विपत्तियों का निवारण करें ॥ १०॥)

उच्चण्डे यच्छिखण्डे निबिडयति नभः क्रोडमर्कोऽटति द्या-
मभ्यस्य प्रौढतापग्लपितवपुरपो बिभ्रतीरभ्रपङ्क्तीः ।
धत्ते शुष्यत्सुधोत्सो विधुरपमधुनः क्षौद्रकोशस्य साम्यं
रक्षन्त्वस्त्रप्रभोस्ते रचितसुचरितव्युष्टयो घुष्टयोः वः ॥ ११॥

(अर्थ - शत्रुदल को प्रलय करने वाली सुदर्शन ज्वाला के आकाश मण्डल में प्रकट होने पर उससे प्रतप्त होकर सूर्य, क्षीणकाय बन, शीतल जल पूर्ण पङ्क्ति का आश्रय लेता है । तथा चन्द्रमा भी अमृत प्रवाह के शुष्क हो जाने से मधुशून्य मधुच्छत्र के सदृश निष्प्रभ हो जाता है । इस प्रकार विविध सच्चरित्र की समृद्धि करनें वाली श्रीचक्रराज की किरणें आप सबकी रक्षा करें ॥ ११॥)

पद्मौघो दीर्घिकाम्भस्यवनिधरतटे गैरिकाम्बुप्रपातः
सिन्दूरं कुञ्जराणां दिशि दिशि गगने सान्ध्यमेघप्रबन्धः ।
पारावारे प्रवालो वनभुवि च तथा प्रेक्ष्यमाणः प्रमुग्धैः
साधिष्ठं वः प्रमोदं जनयतु दनुजद्वेषिणस्त्वैषराशिः ॥ १२॥

(अर्थ - श्रीचक्रराज का ज्वाला समूह, स्वच्छतर सरोवर के जल में प्रतिबिम्बित होने पर अल्पज्ञो के लि, कमल खण्ड के समान और पर्वतों के स्फटिक तट में गेरू के निर्झर प्रताप के सदृश तथा पूर्व आदि दिशां में दिग्गजों के मस्तक के अलङ्कार स्वरूप सिन्दूर की तरह एवं आकाश में सायङ्कालीन जलधर पटल की भाँति भाषित होता है । इसी प्रकार समुद्र में प्रवाल मूँगे की तरह और वनस्थली में तो किसलय पल्लव के सदृश जान पडता है । इस प्रकार सन्दिग्ध जनों द्वारा देखी जाने वाली, दैत्य एवं दानव कुल के संहारक श्रीसुदर्शन भगवान् की वह दिव्य तेजो राशि, आपके लि, सन्तोष प्रद प्रमोद और प्रबोध प्रदान करे ॥ १२॥)

भानो भा नो त्वदीया स्फुरति कुमुदिनीमित्र ते कुत्र तेज-
स्तारास्तारादधीरोऽस्यनल न भवतः स्वैरमैरम्मदार्चिः ।
शंसन्तीत्थं नभःस्था यदुदयसमये चक्रराजांशवस्ते
युष्माकं प्रौढतापप्रभवगदापक्रमाय क्रमन्ताम् ॥ १३॥

(अर्थ - जिस ज्वाला के उदय काल में आकाश के देवता लोग इस प्रकार उपहास पूर्वक कहते हैं, कि हे सूर्य अब तुम्हारा तेज नहीं चमक रहा है । हे चन्द्र तुम्हारा प्रकाश कहाँ विलीन हो गया हे तारागण तुम सभी अदृश्य लग रहे हो । हे अग्निदेव क्यों अधीर बन रहे हो हे विद्युत्लते अब तुम्हारी स्वतन्त्रता छिन ग । इस प्रकार सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्रों को आक्रान्त करने वाली श्रीचक्रराज की किरणें आपको प्रकृष्ट सन्ताप देने वाले, भव-रोग उपशमन के लि सर्वदा सचेष्ट रहें ॥ १३॥)

जग्ध्वा कर्णेषु दूर्वाङ्कुरमरिसुदृशामक्षिषु स्वर्वधूनां
पीत्वा चाम्भश्चरन्त्यः सवृषमनुगता वल्लवेनादिमेन ।
गावो वश्चक्रभर्तुः परममृतरसं प्रश्रितानां दुहानाः
ऋद्धिं स्वालोकलुप्तत्रिभुनतमसः सानुबन्धां ददन्ताम् ॥ १४॥

(अर्थ - शत्रुवर्ग की स्त्रियों के कानों में आभूषण के स्थान पर धारण किये गये नूतन दूर्वादल के गुच्छों को खाकर और उन्हें विधवा बनाकर पश्चात् देवाङ्गनां के नेत्र के शोकाश्रु को पीकर के

वृष रूप धर्म के साथ आदि गोपाल श्री कृष्णचन्द्र का अनुगमन करने वाली, और अपने आश्रितों को मोक्षरूप अमृत देती हु एवं अपने प्रकाश द्वारा त्रिलोक के अन्धकार को नष्ट करने वाली, श्रीचक्रराज भगवान् की श्रीगोस्वरूप किरणें आपको नित्य स्थायी सम्पत्ति प्रदान करें ॥ १४॥)

सेनां सेनां मघोनो महति रणमुखेऽलं भयं लम्भयन्ती-
रुत्सेकोष्णालुदोष्णां प्रथमदिविषदामावलीर्यावलीढे ।
विश्वं विश्वम्भराद्यं रथपदधिपतेर्लीलया पालयन्ती
ऋद्धिः सा दीधितीनां वृजिनमनुजनुर्मार्जयत्वार्जितं वः ॥ १५॥

(अर्थ - जो भयङ्कर युद्ध के स्थल में सेनापति सहित इन्द्र की सेना को पर्याप्त भयभीत करती हु एवं बल से उन्मत्त तथा प्रतप्त और असहिष्णु भुजा वाले दैत्य दानावों के समूह को भक्षण कर डालती है । इस प्रकार श्रीसुदर्शनराज की ज्वालाराशि, जो समस्त भूमण्डल आदि लोकों के परित्राण की अनायास ही क्षमता रखती है । वह आप सबके जन्म-जन्मार्जित के पापों का प्रक्षालन करें ॥ १५॥)

तप्ता स्वेनोष्मणेव प्रतिभटवपुषामस्रधारां धयन्ती
प्राप्तेव क्षीबभावं प्रतिदिशमसकृत्तन्वती घूर्णितानि ।
वंशास्थिस्फोटशब्दं प्रकटयति पटून्याऽऽवहन्त्यट्टहासान्
भा सा वः स्यन्दनाङ्गप्रभुसमुदयिनी स्पन्दतां चिन्तिताय ॥ १६॥

(अर्थ - जो चक्र ज्वाला, अपनी ऊष्मा से प्रतप्त होकर शत्रुवृन्द के शरीर से निकली हु रक्त धारा के पीने से, उन्मत्त जैसी बनकर प्रत्येक दिशां में बार-बार घूमा करती है । तथा शरीर के आधार भूत वंशनाल के समान आकार वाली, पीठ की हड्डी के टूटने की तरह चटचटा शब्द किया करती है । इस प्रकार चित्त को विक्षुब्ध करनें वाले साट्टहास को करती हु वह सुदर्शन राज की दिव्य प्रभा आपके अभीष्ट मनोरथ को सफल करने के लिये सचेष्ट हो ॥ १६॥)

देवैरासेव्यमानो दनुजभटभुजादण्डदर्पोष्णतप्तै-
राशारोधोऽतिलङ्घी लुठदुडुपटलीलक्ष्यडिण्डीरपिण्डः ।
रिङ्गज्ज्वालातरङ्गत्रुटितरिपुतरुव्रातपातोग्रमार्ग-
श्चाक्रो वः शोचिरोधः शमयतु दुरितापह्नवं दाववह्निम् ॥ १७॥

(अर्थ - दानव वीरों के दर्पपूर्ण भुजदण्डों की ऊष्णता से सन्तप्त देववर्ग जिसकी सेवा करते हैं और जो दिशा रूप सीमां को अतिक्रान्त कर लिया है, चमकते हु नक्षत्र मण्डल जिसमें फेन पिण्ड के सदृश प्रतीत होते हैं । जो अपनी ज्वालारूप चञ्चल तरङ्गों द्वारा वृक्ष समूह रूप शत्रु मण्डल को तोड-तोड गिरा देने से मार्ग को भयङ्कर कर डाला है । वह श्रीसुदर्शन ज्वालारूप महानद आप लोगों के पापों के दावानल को शमन करें ॥ १७॥)

भ्राम्यती संश्रितानां भ्रमशमनकरी च्छन्न सूर्यप्रकाशा
सूर्यालोकानुरूपा रिपुहृदयतमस्कारिणी निस्तमस्का ।
धारासम्पातिनी च प्रकटितदहना दीप्तिरस्त्रेशितुर्व-
श्चित्रा भद्राय विद्रावितविमतजना जायतामायताय ॥ १८॥

(अर्थ - श्रीचक्रराज की जो विचित्र प्रभा स्वयं भ्रमण करती हु भी अपने आश्रितों के भ्रम को शमन करती है । एवं सूर्य प्रकाश को आवृत करती हु भी सूरियों को दर्शन में प्रकाश प्रदान करती है । शत्रु को विचेत बनाती हु भी स्वयं ज्योति स्वरूप है । तथा जल प्रताप का कारण होकर प्रचण्ड अग्नि को भी दीप्त करती है । प्रति पक्षियों को विद्रावण कर देने वाली वह दिव्य प्रभा आपके लि असीम मङ्गल सम्पन्न करे ॥ १८॥)

निन्ये वन्येव काशीदवशिखिजटिलज्योतिषा येन दाहं
कृत्या वृत्त्या विलिल्ये शलभसुलभया यत्र चित्रप्रभावे ।

रुद्रोऽप्यद्रेर्दुहित्रा सह गहनगुहां यद्भयादभ्ययासीत्
दिश्याद्विश्वार्चितो वः स शुभमनिभृतं शौरिहेतिप्रतापः ॥ १९॥

(अर्थ - दावानल के समान जिसकी जाज्वल्यमान ज्वाला ने काशीपुरी को वन समूह की तरह भस्मसात कर दिया था, और उसके विचित्र तेज में कृत्या पिशाची शलभ पतङ्ग के सदृश विलीन हो ग । जिससे भयभीत होकर शङ्कर भी पार्वती के साथ बडी गहन गफुआ में जाकर छिप गये । श्रीचक्रराज का वह विश्व वन्द्य प्रताप आप सभी को प्रस्फुट कल्याण प्रदान करे ॥ १९॥)

उद्यन्बिम्बादुदारान्नयनजलहिमं मार्जयन्निर्जरीणा-
मज्ञानध्वान्तमूर्च्छाकरजनिरजनीभञ्जनव्यञ्जिताध्वा ।
न्यक्कुर्वाणो ग्रहाणां स्फुरणमपहरन्नर्चिषः पावकीया-
श्चक्रेशार्कप्रकाशो दिशतु दश दिशो व्यश्नुवानं यशो वः ॥ २०॥

(अर्थ - अत्यन्त विशाल मण्डल से प्रकट होकर देवाङ्गनां के शीतल शोकाश्रु का सम्मार्जन करता हुआ एवं अज्ञान रूप अन्धकार की मूर्छा कर, व्यामोहात्मक रात्रि को विनष्ट करके जो सुस्पष्ट मार्ग का प्रदर्शन करता है । तथा जिसने नक्षत्रों की कान्ति को तिरस्कृत करते हु अग्नि-ज्वालां को भी हतप्रभ कर डाला है । श्रीसुदर्शन सूर्य का वह प्रकाश आपके लि दश दिगन्त व्यापी यश प्रदान करे ॥ २०॥)

वर्गस्य स्वर्गधाम्नामपि दनुजनुषां विग्रहं निग्रहीतुं
दातुं सद्योऽबलानां श्रियमतिशयिनीं पत्रभङ्गानुवृत्या ।
योक्तु देदीप्यते या युगपदपि पुरो भूतिमय्या प्रकृत्या
सा वो नुद्यादविद्यां द्युतिरमृतरसस्यन्दिनी स्यान्दनाङ्गी ॥ २१॥

(अर्थ - देवता और दैत्यों के विरोध तथा शरीर के उपशम के लि, दैत्यो की सेना के वाहनों को विनष्ट करके, और उनकी सम्पत्ति को भी नष्ट-भ्रष्ट करने के लि, तथा देवाङ्गनां को कर्ण के आभूषणसे अलङ्कृत करके, अत्यन्त शोभा प्रदान करनें के लि एवं दानवों के नगरों को भस्म करके, राख का ढेर कर देने के लि तथा अमरावती को उत्तम ऐश्वर्य द्वारा समृद्ध करनें के लि जो सर्वदा सुप्रकाशित रहती है । अमृत रस का प्रवाह बहाने वाली श्रीचक्रराज भगवान् की वह ज्वाला कान्ति आपकी अविद्या का निराकरण करे ॥ २१॥

दाहं दाहं सपत्नान्समरभुवि लसद्भस्मना वर्त्मना यान्
क्रव्यादप्रेतभूताद्यभिलषितपुषा प्रीतकापालिकेन ।
कङ्कालैः कालधौतं गिरिमिव कुरुते यः स्वकीर्तेर्विहर्तुं
घृष्टिः सान्दृष्टिकं वः सकलमुपनयत्वायुधाग्रेसरस्य ॥ २२॥

(अर्थ - समर भूमि में राक्षस वीरों को जला-जलाकर उनके शरीर के भस्म से विभूषित एवं अपक्व मांसाहारी भूत प्रेतों को सुपुष्ट करने वाली तथा रुधिर पान करने वाले कापालिक वृन्द से व्याप्त मार्ग द्वारा गमन करती हु जो चक्र ज्वाला अपनी कीर्ति सञ्चार के लि मृत दैत्यों के अस्थि पुञ्ज से कैलश पर्वत के समान श्वेत पर्वत का निर्माण करती है । वह आप सबके अभीष्ट फल को सद्यः सम्पन्न करे ॥ २२॥)

दग्धानां दानवानां सभसितनिचयैरस्थिभिः सर्वशुभ्रां
पृथ्वीं कृत्वापि भूयो नवरुधिरझरीकौतुकं कौणपेभ्यः ।
कुर्वाणं वाष्पपूरैः कुचतटघुसृणक्षालनैस्तद्वधूनां
पापं पापच्यमानं शमयतु भवतां शस्त्रराजस्य तेजः ॥ २३॥

(अर्थ - जो दैत्य दानवों को जलाकर और उसकी भस्म मय अस्थियों द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी को श्वेत वर्ण की बनाकर तथा उनकी स्त्रियों के कुचों मे अनुलिप्त कुङ्कुम पङ्क को प्रक्षालन करने वाले अश्रु-प्रवाह के साथ ही साथ, पिशाच दल के लि, अभिनव रुधिर

धारा के प्रवाह का नाट्य रचता है । वह श्रीसुदर्शन चक्र का
दिव्य तेज आपके परिपक्व पाप को शमन करे ॥ २३॥)

मागान्मोषं ललाटानल इति मदनद्वेषिणा ध्यायतेव
स्रष्टा प्रोन्निद्रवासाम्बुजदलपटलप्लोषमुत्पश्यतेव ।
वज्राग्निर्मा स्म नाशं व्रजदिति चकितेनेव शक्रेण बद्धैः
स्तोत्रैरस्त्रेश्वरस्य द्यतु दुरितशतं द्योतमाना द्युतिर्वः ॥ २४॥

(अर्थ - मस्तक की नेत्राग्नि कहीं शान्त न हो जाय दस आशङ्का से
शङ्कर जी द्वारा, तथा अपने निवास स्थान रूप, विकसित कमल दल
के दग्ध हो जानें की आशङ्का से श्रीब्रह्मदेव एवं अपने वज्राग्नि के
शीतल पड जानें के भय से इन्द्र देव, किये गये सुबद्ध स्तोत्रों
से प्रकाशमान श्रीसुदर्शन भगवान् की ज्वाला आपके, सैकडों पापों
को विनष्ट करदें ॥ २४॥

॥ इति ज्वालावर्णनम् ॥

अथ नेमिवर्णनम्
शस्त्रास्त्रं शात्रवाणां शलभकुलमिव ज्वालया लेलिहाना
घौषैः स्वैः क्षोभयन्ती विघटितभगवद्योगनिद्रान्समुद्रान् ।
व्यूढोरःप्रौढचारत्रुटितपटुरटत्कीकसक्षुण्णदैत्या
नेमिः सौदर्शनी वः श्रियमतिशयिनीं दाशताशताब्दम् ॥ २५॥

(अर्थ - शत्रुवर्ग के अस्त्र शस्त्रों को जो इस प्रकार निगल कर
विलीन कर देती है जैसे दीप पतङ्ग को और अपने भयङ्कर घोषों
द्वारा भगवान् की योग निद्रा के अधिष्ठान स्वरूप समुद्रों को विक्षुब्ध
करती हु तथा दैत्यों के विशाल वक्षःस्थल को हड्डियों को तोडकर
जो उन्हें धूल में मिला देती है । वह श्रीसुदर्शन चक्र की नेमि,
आपके लि सहस्रों वर्ष तक उत्तम सम्पत्ति प्रदान करती रहे ॥ २५॥)

धारा चक्रस्य तारागणकपिशघृणिद्योतितद्युप्रचारा
var - कणविततिं
पारावाराम्बुपूरक्वथनपिशुनितोत्तालपातालयात्रा ।
गोत्राद्रिस्फोटशब्दप्रकटितवसुधामण्डलीचण्डयाना
पन्थानं वः प्रदिश्यात्प्रशमनकुशला पाप्मनामात्मनीनम् ॥ २६॥

(अर्थ-जो चक्रराज की नेमि अपनें प्रकृष्ट प्रकाश से तारागण की
किरणों को हतप्रभ एवं पीली कर देती है, और स्वयं पूर्ण प्रकाश
से आकाश में स्वच्छन्द विचरती है । सामुद्रिक जलराशि की उत्तुङ्ग
लहरें जिसकी निरङ्कुश पाताल यात्रा की सूचना देती रहती हैं ।
कुलाचल के फूटनें का शब्द जिसकी भूमण्डल की भयङ्कर यात्रा
का सङ्केत करता है । इस प्रकार स्वाश्रित वर्ग के पाप शमन
में अतीव कुशल श्रीसुदर्शन की नेमि धारा आपको अभीष्ट मार्ग
प्रदर्शन करे ॥ २६॥)

यात्रा या त्रातलोका प्रकटितवरुणत्रासमुद्रे समुद्रे सत्त्वासत्त्वासहोष्णा
कृतसगरुदगस्पन्ददाना ददाना । हानिं हा निन्दितानां जगति परिषदां
दानवीनां नवीनां चक्रे चक्रेशनेमिः शममुपहरतु सप्रभावप्रभा
वः ॥ २७॥ (अर्थ-जिसकी यात्रा से लोक रक्षण प्राप्त होता है और
जिसकी यात्रा समुद्र के विक्षोभ द्वारा वरुणदेव को भी, भय से
सशङ्कित कर देती है । जो अपने असह्य प्रताप द्वारा जड एवं
चेतनों को विकल बनाकर सपक्ष पर्वतों को भी प्रकम्पित कर
उन्हें उड जानें के लि विवश कर देती है । इस तरह संसार के
निन्दनीय दानव समाज के लि नित्य प्रति न-न हानि करने वाली,
अद्भुत प्रभावशाली वह श्रीसुदर्शन चक्र की नेमि आप के लि शान्ति
का उपहार दे ॥ २७॥)

यत्रामित्रान्दिधक्षौ प्रविशति बलिनो धाम निःसीमधाम्नि
ग्रस्तापस्तापशीर्णैः प्रगुणितसिकतो मौक्तिकैःशौक्तिकेयैः ।

राशिर्वारामपारां प्रकटयति पुनर्वैरिदाराश्रुपूरैः
वृद्धिं निर्याति निर्यापयतु स दुरितान्यस्त्रराजप्रधिर्वः ॥ २८॥

(अर्थ-जो अपनें असीम तेज में, अपनें शत्रु दानवों को डालनें की इच्छा से जब वह बलि के लोक में प्रवेश करती है, तो उसके तेज से समुद्र का जल शुष्क हो जाता है, और तब फिर सीपियों से उत्पन्न मोतियों के समूह बालुका की राशिके सदृश दिखा पड़ने लगते हैं । परन्तु दानवों के मारे जने पर रोती हु उनकी स्त्रियों के शोकाश्रु जल द्वारा वह समुद्र फिर अगाध जल से भर जाता है । ऐसे सामर्थ्यवाली श्रीसुदर्शन चक्र की नेमि आपके पापों को नष्ट करदे ॥ २८॥)

कक्ष्यातौल्येन कद्रूतनयफणमणीन्कल्यदीपस्य युञ्जन्
पातालान्तः प्रतापी निखिलमपि तमः स्वेन धाम्ना निगीर्य ।
दैतेयप्रेयसीनां वमति हृदि हतप्रेयसां भूयसां य-
श्चक्राग्रीयाग्रदेशो दहतु विलसितं भूयसामंहसां वः ॥ २९॥

var - बह्वसावं
(अर्थ-जो चक्र प्रधि पाताल लोक में प्रवेश करके अपने तेज द्वारा वहाँ के समस्त अन्धकार को पी डालती ह,ऐ तथा वहाँ के सर्पों के फण की मणियों को भी प्रभात काल के निष्प्रभ दीप के सदृश कान्तिहीन कर देती हैं और फिर उसी अन्धकार को पतियों के मर जाने पर विधवा बनी, उन्हीं दैत्यों की स्त्रियों के हृदय में बमन भी कर देती हैं । वह चक्रनेमि आप सबके बहु सङ्ख्यक पापों के विपाक को अच्छी तरह भस्म कर दे ॥ २९॥)

कृष्णाम्भोदस्य भूषा कृतनयननयव्याहतिर्भार्गवस्य
प्राप्तामावेदयन्ती प्रतिभटसुदृशामुद्भटां वाष्पवृष्टिम् ।
निष्टप्ताष्टापदश्रीः सममरचमूगर्जितैरुज्जिहाना
कीर्तिं वः केतकीभिः प्रथयतु सदृशीं चञ्चला चक्रधारा ॥ ३०॥

(अर्थ-श्याम घन की छटा वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को अलङ्कृत करने वाली एवं परशुराम की नीति तथा शुक्राचार्य के नेत्र को नष्ट करनें वाली, तथा दैत्य दानवों की स्त्रियों के नेत्रों से प्रकृष्ट अश्रुधारा को बहाती हु स्वयं तप्त सुवर्ण के सदृश शोभायमान, देवसेना के घोष के साथ जो प्रकट हुआ करती है । वह चञ्चला चक्रधारा केतकी के स्वच्छ पुष्प के समान आपकी कीर्ति को विकसित करे ॥ ३०॥)

वप्राणां भेदिनीं यः परिणतिमखिलश्लाघनीयां दधानः
क्षुण्णां नक्षत्रमालां दिशि दिशि विकिरन्विद्युता तुल्यकक्ष्यः ।
निर्याणेनोत्कटेन प्रकटयति नवं दानवारिप्रकर्षं
चक्राधीशस्य भद्रो वशयतु भवतां स प्रधिश्चित्तवृत्तिम् ॥ ३१॥

(अर्थ-जो बडे-बडे प्रकार एवं तत्सदृश शरीर वाले शत्रु समूह का विघटन करती और अप्राकृत दिव्य पुरुष विग्रह से भिन्न विचित्र चक्राचार रूप धारण करती है । तथा नक्षत्र मण्डल को छिन्न-भिन्न करके प्रत्येक दिशां में बिखेरती हु अपने स्वयं विद्युत के सदृश चञ्चल रूप में प्रकाशित होती है । जो अपने प्रकृष्ट वेग वाले प्रयाण के द्वारा भगवान् के अभिनव महत्त्व को प्रकट करती है । वह श्रीचक्रराज की दिव्य नेमि आपकी चित्त-वृत्ति को शान्त तथा वश में करे ॥ ३१॥)

नाकौकः शत्रुजत्रुत्रुटनविघटितस्कन्धनीरन्ध्रनिर्यन्
नव्यक्रव्यास्रहव्यग्रसनरसलसज्ज्वालजिह्वालवह्निम् ।
यं दृष्ट्वा सांयुगीनं पुनरपि विदधत्याशिषो वीर्यवृद्ध्यै
गीर्वाणा निर्वृणाना वितरतु स जयं विष्णुहेतिप्रधिर्वः ॥ ३२॥

(अथ-असुरों के शत्रु की हड्डी के टूट जाने से निरन्तर निकलने

वाली नवीन मांस युक्त जो शोणित धारा, जिसको हव्य के समान
रस युक्त भक्षण करने से जिसकी ज्वाला स्वरूप जिह्वा सुपुष्ट हो
ग है । एवं सङ्ग्राम भूमि में विराजमान श्रीसुदर्शन भगवान् को
देखकर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक देव मण्डल, जिनकी शैर्यवृद्धि के
लि प्रनः पुनः शुभकामना किया करते हैं । उन श्रीचक्रराज की
कल्याण प्रद नेमि, आपको सर्वदा विजय प्रदान करे ॥ ३२॥)

धन्वाध्वन्यस्य धारासलिलमिव धनं दुर्गतस्येव दृष्टि-
र्जात्यन्धस्येव पङ्गोः पदविहृतिरिव प्रीणनी प्रेमभाजाम् ।
पत्युर्मायाक्रियायां प्रकटपरिणतिर्विश्वरक्षाक्षमायां
मायामायामिनीं वस्त्रुटयतु महती नेमिरस्त्रेश्वरस्य ॥ ३३॥

(अर्थ-जो मरु भूमि के पथिक के लि, प्रवाही जल के सदृश है,
तथा निर्णन को धन, जन्मान्ध को सुन्दर दृष्टि, पङ्गु को उत्तम
पद विहार एवं भक्तों के लि आनन्द रूप है । इसी प्रकार जो भगवान्
के भी विलास के लि चक्र स्वरूप है, वह श्रीस्त्रराज की विचित्र
नेमि आपकी अनर्थ प्रद अविद्या को नष्ट करे ॥ ३३॥)

त्राणं या विष्टपानां वितरति च यया कल्प्यते कामपूर्ति-
र्न स्थातुं यत्पुरस्तात्प्रभवति कलयाप्योषधीनामधीशः ।
उन्मेषो याति यस्या न समयनियतिं सा श्रियं वः प्रदेया-
न्न्यक्कृत्य द्योतमाना त्रिपुरहरदृशं नेमिरस्त्रेश्वरस्य ॥ ३४॥

(अर्थ-जो विश्व का संरक्षण करती है । जिसके द्वारा उपासकों की
अभीष्ट सिद्धि होती तथा कामादि शत्रु भी निवृत्त हो जाते हैं ।
जिसके समक्ष चन्द्रमा क्षणमात्र भी नहीं रुक सकता तथा जिसका
उदय काल अनियत रहता है । इस प्रकार श्रीशङ्कर जी के तृतीय
नेत्र को भी हत-प्रभ कर देनें वाली श्रीचक्रराज की वह नेमि
आपको ऐश्वर्य प्रदान करे ॥ ३४॥)

नक्षत्रक्षोदभूतिप्रकरविकिरणश्वेतिताशावकाशा
जीर्णैः पर्णैरिव द्यां जलधरपटलैश्चूर्णितैरूर्णुवाना ।
आजावाजानवाजानतरिपुजनतारण्यमावर्तमाना
नेमिर्वात्येव चाक्री प्रणुदतु भवतां संहतं पापतूलम् ॥ ३५॥

(अर्थ-जिसने नक्षत्र रूप भस्मराशि को विखेर कर और दिशां के
मध्य भाग को श्वेत वर्ण कर दिया है तथा अपने वेग के कारण उडे
हु प्राचीन पत्रस्वरूप, मेघ-घटां से आकाश मण्डल को आवृत कर
रखा है । जो युद्ध भूमि में अपने सहज वेग द्वारा जङ्गल-रूप
शत्रुं को झुका-झुकाकर उन्हीं के बीच में स्वतन्त्र सञ्चरण
करती है । वह श्रीचक्रराज की नेमि वात्या बवण्डर के सदृश
आपके पाप-पुञ्ज को रु के समान उडा दे ॥ ३५॥)

क्षिप्त्वा नेपथ्यशाटीमिव जलदघटां जिष्णुकोदण्डचित्रां
तारापुञ्जं प्रसूनाञ्जलिमिव विपुले व्योमरङ्गे विकीर्य ।
निर्वेदग्लानिचिन्ताप्रभृतिपरवशानन्तरा दानवेन्द्रान्
नृत्यन्नानालयाढ्यं नट इव तनुतां शर्म चक्रप्रधिर्वः ॥ ३६॥

(अर्थ-जो इन्द्र धनुष की तरह चित्र-विचित्र जलद घटा को
नाट्य मञ्च के परदे के सदृश खोलकर और विशाल आकाश मण्डल
में तारा-पुञ्ज की पुष्पाञ्जलि विखेरती रहती है । तथा विषाद,
ग्लानि, चिन्ता आदि के वशीभूत बडे-बडे दानवेन्द्रों के मध्य में
विविध प्रकार की नाट्य कला में निपुण नट के सदृश नृत्य किया
करती है । वह चक्रेश भगवान् की नेमि आपके सुख को विस्तृत
करे ॥ ३६॥)

दौर्गत्यप्रौढतापप्रतिभटविभवा वित्तधाराःसृजन्ती
गर्जन्ती चीत्क्रियाभिर्ज्वलदनलशिखोद्दामसौदामनीका ।
अव्यात्क्रव्याद्वधूटीनयनजलभरैर्दिक्षु नव्याननाव्यान्

पुष्यन्ती सिन्धुपूरान् रथचरणपतेर्नेमिकादम्बिनी वः ॥ ३७॥

(अर्थ-जो दरिद्रता के प्रकृष्ट दुःख को निराकरण करने की शक्ति से सम्पन्न हैं, और विविध धन धान्य की वर्षा किया करती है । जिसकी गर्जना, भयप्रर चीत्कार के साथ होती है । जाज्वल्य मान अग्निज्वाला ही जिसकी चमकीली बिजली है और जो दैत्यों की विधवा स्त्रियों के शोकाश्रु द्वारा नये-नये अगाध समुद्र प्रवाह को प्रत्येक दिशां मे बढाती रहती है । वह चक्रनेमि स्वरूप मेघमाला आपकी रक्षा करे ॥ ३७॥)

सन्दोहं दानवानामजसमजमिवालभ्य जाज्वल्यमाने
वह्नावह्नाय जुह्वत्त्रिदशपरिषदे स्वस्वभागप्रदायी ।
स्तोत्रैर्ब्रह्मादिगीतैर्मुखरपरिसरं श्लाघ्यशस्त्रप्रयोगं
प्राप्तः सङ्ग्रामसत्रं प्रधिरसुररिपोः प्रार्थितं प्रस्नुतां वः ॥ ३८॥

(अर्थ - ब्रह्मा रुद्र प्रभृति देवों से गाये गये एवं सुन्दर शब्दावली से प्रशंसित तथा प्रख्यात शस्त्र प्रयोग वाले सङ्ग्राम यज्ञ में प्रवेश कर जो दानव सैन्य को बकरों के झुण्ड की तरह काट-काटकर, प्रचण्ड अग्नि ज्वाला में उनकी अतिशीघ्र आहुति देती हु समस्त देवतां को यथा योग्य उनका भाग प्रदान किया करती है । वह सुदर्शन भगवान् की चक्रनेमि आपके लि प्रार्थित पदार्थ सम्पन्न करें ॥ ३८॥)

॥ इतिनेमिवर्णनम् ॥

अथ अरवर्णनम् तृतीयम्
उत्पातालातकल्पान्यसुरपरिषदामाहवप्रार्थिनीना-
मध्वानध्वाववोधक्षपणचणतमः क्षेपदीपोपमानि ।
त्रैलोक्यागारभारोद्वहनसहमणिस्तम्भसम्पत्सखानि
त्रायन्तामन्तिमायां विपदि सपदि वोऽराणि सौदर्शनानि ॥ ३९॥

(अर्थ - सङ्ग्राम के लि उत्सुक दैत्य समूह के विनाशार्थ, जो उत्पात सूचक, अलातुल्मुक के समान हैं । एवं मार्ग तथा अमार्ग के अप्रकाशन घन अन्धकार की निवृत्ति के लि दीप सदृश हैं । तथा त्रिलोक रूप विशाल भवन के भार वहन करनें में जो मणि स्तम्भ की सामर्थ्य रखते हैं । इस प्रकार के सुदर्शन भगवान् के अर समूह, प्राणान्त के समय आने वाली आपकी अन्तिम विपत्ति के समय अति शीघ्रपरित्राण करेम् ॥ ३९॥)

ज्वालाजालप्रवालस्तबकितशिरसो नाभिमावालयन्त्यः
सिक्ता रक्ताम्बुपूरैः शकलितवपुषां शात्रवानीकिनीनाम् ।
चक्राक्रीडप्ररूढाभुजगशयभुजोपघ्ननिघ्नप्रचाराः
पुष्प्यन्त्यःकीर्तिपुष्पाण्यरकनकलताः प्रीतये वः प्रथन्ताम् ॥ ४०॥

(अर्थ-जो चक्र स्वरूप उद्यान की नाभिरूप आलवाल क्यारी में उत्पन्न हु हैं । तथा युद्ध में छिन्न-भिन्न शरीर वाले दैत्य सेना के रक्त प्रवाह द्वारा सिञ्चित की ग है । शेषशायी भगवान् के भुजदण्ड के आलम्बन द्वारा जो सञ्चरण किया करती है । जिनका अग्रभाग ज्वाला समूह रूप प्रवाल के स्तवक गुच्छे से सुशोभित रहा करता है । इस प्रकार कीर्तिरूप पुष्पों को विकशित करनें वाली श्रीसुदर्शनराज की अर रूप स्वर्ण लतायें अपकी प्रसन्नता के प्रवृद्ध होती रहें ॥ ४०॥)

ज्वालाजालाब्धिमुद्रं क्ष्तीवलयमिवाबिभ्रती नेमिचक्रं
नागेन्द्रस्येव नाभेः फणपरिषदिव प्रौढरत्नप्रकाशा ।
दत्तां वो दिव्यहेतेर्मतिमरविततिः ख्यातसाहस्रसङ्ख्या
सङ्ख्यावत्सङ्गचित्तश्रवणहरगुणस्यन्दिसन्दर्भगर्भाम् ॥ ४१॥

(अर्थ-जो प्रकाशमान ज्वाला समूहात्मक समुद्र रूप सीमा चिह्न से

विशिष्ट नेमि चक्र को भू-वलय के सदृश धारण करती है ।
तथा जो कुण्डली भूत शेषनागके सदृश एवं उनके फण समूह के
समान स्थित है । जो सहस्र सङ्ख्या से सुशोभित होती हु सुन्दर
रत्न प्रभा से प्रकाशित रहती है वह चक्रेश की अर परम्परा
ज्ञानियों के भी चित्त एवं श्रवण को आकृष्ट करने वाले दिव्य
गुणों की प्रवाह मयी बुद्धि आपको प्रदान करे ॥ ४१॥)

ब्रह्मेशोपक्रमाणां बहुविधविमतक्षोदसम्मोदितानां
सेवायै देवतानां दनुजकुलरिपोः पिण्डिकाद्यङ्गभाजाम् ।
तत्तद्धामान्तसीमाविभजनविधये मानदण्डायमाना
भूमानं भूयसा वो दिशतु दशशती भास्वराणामराणाम् ॥ ४२॥

(अर्थ-जिनका चित्त अनेक प्रकार के शत्रुवर्ग को निरस्त कर देनें
से सुप्रसन्न रहा करता है तथा दैत्यों के संहारक श्रीसुदर्शन
भगवान् के नाभि आदि अङ्गों के सेवक ब्रह्मा प्रभृति देवतां के निवास
स्थान की सीमा विभाग के निर्णय में जो मानदण्ड का कार्य करते हैं
। एवं भूत दिव्य प्रकाश से सम्पन्न श्रीचक्रराज के सहस्रों अर
आपके महत्त्व को बढावें ॥ ४२॥)

ज्वालाकल्लोलमालानिबिडपरिसरां नेमिवेलां दधाने
पूर्वेणाक्रान्तमध्ये भुवनमयहविर्भोजिना पूरुषेण ।
प्रस्फूर्जत्प्राज्यरत्ने रथपदजलधावेधमानैः स्फुलिङ्गैः
भद्रं वो विद्रुमाणां श्रियमरवितितिर्विस्तृणाना विधत्ताम् ॥ ४३॥

(अर्थ-जिसनें अपनी ज्वालां की पङ्क्तियों से घनीभूत प्रदेश वाले
नेमिरूप तट को धारण कर रखा है और ब्रह्माण्ड स्वरूप हव्य
के भोक्ता आदि पुरुष श्रीसुदर्शन भगवान् जिसके मध्य भाग में
अधिष्ठित हैं । तथा जो चमकीले विशिष्ट रत्नों से भरपूर
हैं । उस श्रीसुदर्शन रूप समुद्र में अरों की पङ्क्तियाँ अपने
प्रवृद्ध स्फुलिङ्गों से प्रवाल समूह की शोभा को प्रकट करती
हु आपको कल्याण प्रदान करे ॥ ४३॥)

नासीरस्वैरभग्नप्रतिभटरुधिरासारधारावसेका-
नेकान्तस्मेरपद्मप्रकरसहचरच्छायया प्राप्य नाभ्या ।
मुक्तानीवाङ्कुराणि स्फुरदनलशिखादर्शितप्राक्प्रवाला- न्यव्याघातेन
भव्यं प्रददेतु भवता दिव्यहेतेरराणि ॥ ४४॥ (अर्थ-जो निर्लज्जता
पूर्वक भगे हु प्रतिभट, सेनापतियों की रुधिर धारा से सिञ्चित
होकर, एवं नियम से फ्रुल्लित कमल पुञ्ज के सदृश कान्ति वाली
नाभिरूप क्यारी से उत्पन्न, होने वाले अङ्कुर के सदृश प्रतीत होते
हैं । तथा प्रज्वलित अग्नि शिखा की तरह प्रकाशित रक्त किसलय
को धारण करने वाले हैं । ऐसे श्रीसुदर्शन चक्र के अर समूह
आप सबको निविघ्न मङ्गल प्रदान करेम् ॥ ४४॥)

दावोल्कामण्डलीव द्रुमगणगहने बाडवस्येव वह्ने-
र्ज्वालावृद्धिर्महाब्धौ प्रवयसि तमसि प्रातरर्कप्रभेव ।
चक्रे या दानवानां हयकरटिघटासङ्कटे जाघटीति
प्राज्यं सा वः प्रेदेयात्पदमरपरिषत्पद्मनाभायुधस्य ॥ ४५॥

(अर्थ-जो वृक्ष समूह के दुःप्रवेश सघन वन में दावानल ज्वाला
के समान और समुद्र में वाडवाग्नि ज्वाला की तरह तथा प्रकृष्ट
अन्धकार में प्रातःकालीन सूर्यप्रभा के सदृश प्रतीत होते हैं
। एवं जो अश्व तथा गजेन्द्रों से परिपूर्ण दानव सैन्य को आक्रान्त
करके त्रस्त करती रहती है । वह श्रीसुदर्शन भगवान् की अर
पङ्क्ति आपको श्रेष्ठ पद प्रदान करे ॥ ४५॥)

तापाद्दैत्यप्रतापातपसमुचितात्त्रायमाणं त्रिलोकीं
लोलैर्ज्वालाकलापैः प्रकटयदभितश्चीनपट्टाञ्चलानि ।
छत्राकारं शलाका इव कनककृताः शौरिदोर्दण्डलग्नं
भूयासुर्भूषयन्त्यो रथचरणमरस्फूर्तयःकीर्तये वः ॥ ४६॥

(अर्थ-दैत्य दानवों के प्रतापी तेज की ज्वाला से आक्रान्त त्रिलोक के रक्षण में तत्पर, तथा अतीव चञ्चल एवं प्रसरणशील ज्वाला समूह द्वारा छत्र में लगी हु चमकीली झालरों के सौन्दर्य को जो सर्वदा प्रकट करती रहती है । भगवान् के भुजदण्ड में विराजमान श्रीसुदर्शन चक्र को छत्र के रूप में सुशोभित करती हु सुवर्ण की शलाकां की तरह सुन्दर लगने वाली उन अर पङ्क्तियों का प्रकाश आपके यश को बढावे ॥ ४६॥)

नाभीशालानिखातां नहनसमुचितां वैरिलक्ष्मीवशानां
संयद्वारीहृतानां समनुविदधती काञ्चनालानपङ्क्तिम् ।
राज्या च प्राज्यदैत्यव्रजविजयमहोत्तम्भितानां भुजानां
तुल्या चक्रारमाला तुलयतु भवतां तूलवच्छत्रुलोकम् ॥ ४७॥

(अर्थ-जो सङ्ग्राम स्वरूप वारी गजगवन्धिनी गर्त से निकली हु शत्रु सम्पत्ति रूप हरिणी के बन्धन के योग्य, नाभि रूप गजशाला में अच्छी तरह गाडी हु सुवर्णमय गजबन्धन स्तम्भ पङ्क्ति के सदृश प्रतीत होती है । तथा बडे-बडे भयङ्कर दैत्य समूह पर विजय प्राप्त कर लेने के महोत्सव से उन्मत्त भुजदण्डों की पङ्क्ति के सदृश जो दिखा पडती है श्रीसुदर्शन चक्र के, अरों की वह माला आपके शत्रु समूह को तूलरु के सदृश निर्मूल कर दें ॥ ४७॥)

आनेमेश्चक्रवालात्त्विष इव विततास्पिण्डिकाचण्डदीप्ते-
र्दीप्ता दीपा इवाराद्गहनरणतमीगाहिनः पूरुषस्य ।
शाणे रेखायितानां रथचरणमये शत्रुशौण्डीर्यहेम्नां
रेखाः प्रत्यग्रलग्ना इव भुवनमरश्रेयणः प्रीणयन्तु ॥ ४८॥

(अर्थ-जो नेमिरूप लोकालोक पर्वत पर्यन्त, नाभिस्वरूप सूर्य के किरणों के सदृश व्याप्त हैं । तथा दुष्प्रवेश सङ्ग्राम रूप अँधेरी रात्रि में सञ्चरण करने वाले श्रीसुदर्शन पुरुष के समीप में अन्धकार विघटनार्थ प्रदीप्त दीप की ज्वाला का कार्य करती है एवं चक्र नामक शाण कसौटी के पर सङ्घर्षित शत्रु वर्ग के मद रूप सुवर्ण की रेखां के समान चमकती रहती हैं । इस प्रकार चक्र की अर श्रेणियाँ समस्त लोक को सुप्रसन्न करे ॥ ४८॥)

दीप्तैरर्चिःप्ररोहैर्दलवति विधृते बाहुनालेनविष्णो-
रुद्यत्प्रद्योतनाभम्प्रथयति पुरुषं कर्णिकावर्णिकायाम् ।
चूडालं वेदमौलिं कलयति कमले चक्रनाम्नोपलक्ष्ये
लक्ष्मीं स्फारामराणि प्रतिविदधतु वः केसरश्रीकराणि ॥ ४९॥

(अर्थ-प्रकाशमान ज्वाला के अँकुर पुञ्ज जिसके सदृश हैं और भगवान् विष्णु के बाहुरूपी नाल में सम्बद्ध हैं । उदयकालीन सूर्यप्रभा के समान तेजस्वी श्रीसुदर्शन पुरुष में जो कर्णिका के आकार में प्रकाशित होते हैं । शास्त्र शिरोमणि वेदान्त तत्त्व जिसके परिमल के समान हैं । ऐसे कमल पुष्प के सदृश सुशोभित श्रीसुदर्शनपुरुष के अर समूह आपको प्रकाशमान लक्ष्मी प्रदान करें ॥ ४९॥)

धातुस्यन्दैरमन्दैः कलुषितवपुषो निर्झराम्भःप्रपाता-
नचिष्मत्या स्वमूर्त्या रथचरणगिरेर्नेमिनाभीतटस्य ।
व्याकुर्वाणारपङ्क्तिर्वितरतु विभुताविस्तृतिं वित्तकोटी-
कोटीरच्छत्रपीठीकटककरिघटाचामरस्रग्विणीं वः ॥ ५०॥

(अर्थ-जिस सुदर्शनरूप पर्वत के नेमि और नाभि, ये दानों तट जैसे हैं । जिसकी अर पङ्क्ति बडे वेग वाले गैरिक धातु प्रवाह के संसर्ग द्वारा रक्त वर्ण को प्राप्त हो गये निर्झर जल प्रवाहों को अपनी प्रदीप्त कान्ती द्वारा जपा पुष्प के सदृश, विस्तृत रूप में व्यक्त करती हैं । वह आपके लि कोटि-कोटि द्रव्य-छत्र-दिव्य

सिंहासन और सुवर्णरत्न तथा गज समूह एवं चमर-माला आदि
विविध वैभव राशि वितरण करे ॥ ५०॥)
॥ इत्यरवर्णनम् ॥

अथ नाभिवर्णनम्
ऐक्येन द्वादशानामशिशिरमहसां दर्शयन्ती प्रवृत्तिं
दत्तः स्वर्लोकलक्ष्म्यास्तिलक इव मुखे पद्मरागद्रवेण ।
देयाद्दैतेयदर्पक्षतिकरणरणप्रीणिताम्भोजनाभि-
र्नाभिर्नाभित्वमुर्व्यास्सुरपतिविभवस्पर्शि सौदर्शनी वः ॥ ५१॥

(अर्थ-जो द्वादश सूर्यों के सम्मिलित तेज की विचित्र प्रवत्ति को प्रकाशित करती है अर्थात् जिसके समक्ष बारहों सूर्यों का सम्मिलित प्रकाश भी मलीन हो जाता है । तथा दैत्यों के अभिमान को विनष्ट करनें के लि प्रधान साधन बनकर जो भगवान् को प्रसन्न किया करती है । एवं जो देव लक्ष्मी के दिव्य मुख पर पद्मराग, माणिक्य के द्रव रस से किये गये तिलक के समान सुशोभित होती है । श्रीसुदर्शन भगवान् की नाभि आपके लि इन्द्र के विभव को भी हतप्रभ करने वाला भू-मण्डल का साम्राज्य समर्पण करे ॥ ५१॥)

शस्त्रश्यामे शताङ्गक्षितिभृति तरलैरुत्तरङ्गै तुरङ्गै-
स्त्वङ्गन्मातङ्गनक्रे कुपितभटमुखच्छायमुग्धप्रवाले ।
अस्तोकं प्रस्नुवाना प्रतिभटजलधौ पाटवं वाडवस्य
श्रेयो वस्संविधत्तां श्रितदुरितहरा श्रीधरास्त्रस्य नाभिः ॥ ५२॥

(अर्थ-शस्त्र सञ्चार की छटा से श्याम वर्ण के प्रतीत होने वाले शताङ्ग अर्थात् रथ समूह जिसमें पर्वत के सदृश है और चञ्चल अश्वे समूह लहर जैसे, तथा मत्त गजेन्द्रों की घटायें ग्राहों के सदृश दिखाती हैं । क्रोधाविष्ट शूर वीरों के मुख की लालिमा जहाँ पर प्रवाल की की तरह चमकती रहती है । इस प्रकार शत्रुं के महा सैन्य रूप समुद्र में बडवानल के उत्कट शौर्य को प्रकट करने वाली तथा अपने अयित वर्ग के पापों को शमन करने वाली श्रीसुदर्शन भगवान् की पवित्र नाभि आपको कल्याण प्रदान करे ॥ ५२॥)

ज्वालाचूडालकालानलचलनसमाडम्बरा साम्परायं
यासावासाद्य माद्यत्सुरसुभटभुजास्फोटकोलाहलाढ्यम् ।
दैत्यारण्यं दहन्ती विरचयति यशोभूतिशुभ्रां धरित्रीं
सा वश्चक्रस्य नक्रस्यदमृदितगजत्रायिणी नाभिरव्यात् ॥ ५३॥

(अर्थ-जो मदोन्मत्त देव योद्धां की, भुजां की ताल ध्वनि से व्याप्त, युद्ध स्थल में जाकर, प्रलयानल के समान धधकने वाली, अपनी जाज्वल्यमान ज्वाला शिखां के द्वारा दैत्य वृन्दरूप जङ्गल को जलाती हु, और अपने यश की विभूति द्वारा, भूमण्डल का शुभ्रवर्ण से अभिषिक्त कर देती है । वह ग्राह से ग्रस्त गजेन्द्र का परित्राण करने वाली श्रीचक्रराज की नाभि आप सबका रक्षण करे ॥ ५३॥)

विन्दन्ती सान्ध्यमर्चिर्विदलितवपुषःप्रत्यनीकस्य रक्तैः
स्फायन्नक्षत्रराशिर्दिशि दिशि कणशः कीकसैः कीर्यमाणैः ।
नाकौकःपक्ष्मलाक्षीनवमदहसितच्छायया चन्द्रपादान्
राथाङ्गी विस्तृणाना रचयतु कुशलं पिण्डिकायामिनी वः ॥ ५४॥

(अर्थ-जो अनेक प्रकार के प्रहारों से क्षत-विक्षत शरीर वाले शत्रु सैनिको से निकलती हु रुधिर धारा के द्वारा जो सायङ्कालीन रक्तिम कान्ति प्रकट किया करती है । तथा प्रत्येक दिशां में विखरे हु अस्थि समूह जिसमें तारागण के समान चमकते रहते हैं । देवाङ्गनां के अभिनव मदपूर्ण हास्य कान्ति की धवलिमा से जो चन्द्र किरणों की शोभा विखेरती रहती है एवं भूत रात्रि के स्वरूप को धारण करने वाली वह श्रीसुदर्शन चक्र की नाभि आपको सकुशल रखे ॥ ५४॥)

निःसीमं निस्सृताया भुजधरणिधराघाटतःकैटभारे-
राशाकूलङ्कषर्द्धेरहितबलमहाम्भोधिमासादयन्त्याः ।
चक्रज्वालापगायाश्चलदरलहरीमालिकादन्तुरायाः
बिभ्रत्यावर्तभावं भ्रमयतु भुवने पिण्डिका वः प्रशस्तिम् ॥ ५५॥

(अर्थ-कैटभ दैत्य को मारने वाले भगवान् के पर्वताकार भुजप्रदेश से जो अगाधरूप में प्रवाहित होती है और जिसमें दिशा रूपी तटों को तोड डालने की पूर्ण शक्ति है । जिसमें चञ्चल अर पङ्क्ति रूप लहरों का पूर आया करता है, तथा जो शत्रु सैन्य रूप महा समुद्र मे जाकर प्रवेश करती है । इस प्रकार चक्रराज की ज्वाला रूप नदी में भँवर की तरह सुशोभित होने वाली वह सुदर्शन भगवान् की नाभि आपके यश को विश्व में विकशित करे ॥ ५५॥)

पाणौ कृत्वाहवाग्रे प्रतिभटविजयोपार्जितां वीरलक्ष्मी-
मानीतायास्ततोऽस्याः स्वसविधमसुरद्वेषिणा पूरुषेण ।
प्रासादं वासहेतोर्विरचितमरुणै रश्मिभिः सूचयन्ती
नाभिर्वो निर्मिमीतां रथचरणपतेर्निवृतिं निर्विघाताम् ॥ ५६॥

(अर्थ-विपक्षी योद्धां पर विजय प्राप्त कर सम्पादित की हु वीर लक्ष्मी को युद्ध वेदी पर अपने हस्तगत करके, उसके निवास स्थान के लि श्रीसुदर्शन पुरुष की अरुण किरणों द्वारा बने हु, भव्य भवन के समान प्रतीत होने वाली श्रीचक्रराज की नाभि आप सबके लि निर्विघ्न आनन्द का सम्पादन करे ॥ ५६॥)

डिण्डीरापाण्डुगण्डिररियुवतिमुखैः पिण्डिका कृष्णहेते-
रुच्चण्डाश्रुप्रवर्षैरुपरततिलकैरुक्तशौण्डीर्यचर्या ।
द्वित्रग्रामाधिपत्यद्रुहिणमदमषीदूषिताक्षक्षमाभृत्
सेवाहेवाकपाकं शमयतु भवतां कर्म शर्मप्रतीपम् ॥ ५७॥

(अर्थ-जिनके कपोल शुष्क होकर फेन पिण्ड के सदृश श्वेत हो गये हैं, तथा निरन्तर अश्रु प्रवाह होने से मुख मे अलङ्कार रूप तिलक भी धो उठे हैं । इस प्रकार की शत्रु वर्ग की स्त्रियां द्वारा प्रशंसित महिमा वाली श्रीकृष्णचन्द्र की वह चक्र नाभि, अति स्वल्प दो तीन ग्राम के अधिपति होने पर भी अपने को ब्रह्माण्ड नायक मान बैठे और जिनकी इन्द्रियों में कलुषित भाव भर उठे हैं । उन उन्मत्त नरेशों के शुश्रूषा रूप दुःखदायी कार्मों को प्रशान्त कर दें ॥ ५७॥)

पर्याप्तामुन्नतिं या प्रथयति कमलं या तिरोभाव्य भाति
स्रष्टुस्सृष्टेर्दवीयः कुवलयमहितं या बिभर्ति स्वरूपम् ।
भूम्ना स्वेनान्तरिक्षं कबलयति च या सा विचित्रा विधत्तां
दैतेयारातिनाभिर्द्रविणपतिपदद्रोहिणीं सम्पदं वः ॥ ५८॥

(अर्थ-जो पर्याप्त उन्नति प्रकट करती है और अपने उत्कट सौन्दर्य से कमल की शोभा को भी तिरस्कृत करके सुशोभित होती है, जो ब्रह्मदेव के बह्मलोक से अति दूरस्थ भू-मण्डल द्वारा प्रशंसित दिव्य आकार धारण करती है तथा अपनी व्यापकता से आकाश मण्डल को भी माप लेती है । इस प्रकार अति विलक्षण स्वरूप सम्पन्न वह श्रीचक्रेश की नाभि, कुबेर के वैभव को भी तिरस्कृत करने वाला, विशिष्ट वैभव आपके लि सम्पन्न करे ॥ ५८॥)

वाणीवाङ्गैश्चतुर्भिः सदसि सुमनसां द्योतमानस्वरूपा
बाह्वन्तःस्था मुरारेरभिमतमखिलं श्रीरिव स्पर्शयन्ती ।
दुर्गेवोग्राकृतिर्या त्रिभुवनजननस्थेमसंहारधुर्या
मर्यादालङ्घनं वः क्षपयतु महती हेतिवर्यस्य नाभिः ॥ ५९॥

(अर्थ-जो अपने नेमि, अर, नाभि और अक्ष इन चारों अङ्गों के साथ

एवं परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी से सम्पन्न श्रीसरस्वती देवी की तरह देव स्वरूप विद्वत् मण्डल में प्रकाश करती है तथा भगवान् के वक्ष-स्थल में विराजमान श्रीमहालक्ष्मी के सदृश अपने आश्रितों के लि अभीष्ट फल वितरण किया करती है । एवं दुर्गा देवी की भाँति जो उग्रस्वरूप वाली है, और जिसमें तीनो लोक की उत्पत्ति स्थिति तथा लय की पूर्ण क्षमता है । वह श्रीचक्रराज की नाभि आपके वैदिक धर्म की मर्यादा के अतिक्रामक पापों को नष्ट कर दे ॥ ५९॥)

स्रग्भिः सन्तानजाभिर्मधुरमधुरसस्यन्दसन्दोहिनीभिः
पाटीरैः प्रौढचन्द्रातपचयसुषमालोपनैर्लेपनैश्च ।
धूपैः कालागरूणामपि सुरसुदृशो विस्रमर्चासु यस्याः
गन्धं रुन्धन्ति सा वश्चिरमसुरभिदो नाभिरव्यादभव्यात् ॥ ६०॥

(अर्थ-देवाङ्गनायें जिस नाभि के असुर संहार जन्य मांस शोणित के दुर्गन्ध को, पूजार्थ लाये हु पारिजात पुष्पों से बनी हु तथा मधुर पराग झरने वाली सुन्दर मालां द्वारा, तथा पूर्णचन्द्र की चन्द्रिका जाल को जलाने वाले सुरभि चन्दन के लेप से, एवं कृष्ण, अगरु आदि सुगन्धित धूपों से हटाती हैं । वह दैत्य विनाशक भगवान् सुदर्शन की नाभि, आपकी जन्म-मरण रूप चिरन्तन अमङ्गल से रक्षा करे ॥ ६०॥)

अंहस्संहृत्य दग्ध्वा प्रीतिजनिजनितं प्रौढसंसारवन्या
दूराध्वन्यानधन्यान्महति विनतिभिर्धामनि स्थापयन्ती ।
विश्रान्तिं शाश्वतीं या नयति रमयतां चक्रराजस्य नाभिः
संयन्मोमुह्यमानत्रिदशरिपुदशासाक्षिणी साऽक्षिणी वः ॥ ६१॥

(अर्थ-जो शरणागतों की जन्म-जन्मार्जित पाप राशि को भस्म करके और दुस्तर संसार रूप वन में चिरकाल से भटकते हु भक्त पथिकों को आनन्दरूप श्रीवैकुण्ठ धाम में पहुञ्चा कर उन्हें शाश्वत् शान्ति प्रदान करती है । तथा सङ्ग्राम में व्यामुग्ध दैत्यों की दुर्दशा को देखने से सुप्रसन्न होने वाली वह श्रीचक्रराज की नाभि आपके नेत्रों को आनन्द प्रदान करे ॥ ६१॥)
॥ इति नाभिवर्णनम् ॥

अथाक्षवर्णनम्

श्रुत्वा यन्नाम शब्दं श्रुतिपथकटुकं देवनक्रडनेषु
स्वर्वैरिस्वैरवत्यो भयविवशधियः कातरन्यस्तशाराः ।
मन्दाक्षं यान्त्यमन्दं प्रतियुवतिमुखैर्दर्शितोत्प्रासदर्पै-
रक्षं सौदर्शनं तत्क्षपयतु भवतामेधमानां धनायाम् ॥ ६२॥

(अर्थ-दैत्य दानवों की स्वेच्छा चारिणी स्त्रियाँ पाशा खेलने में कर्ण-कर्कश जिस अक्ष शब्द को सुनकर भयाक्रान्त बुद्धि से पाशे फेंक देती हैं और उन्हें देखकर मुस्कुराती हु देवाङ्गना द्वारा वे बहुत लज्जित हो उठती हैं । इस प्रकार का वह श्रीसुदर्शन भगवान् का अक्ष, शब्द आदि विषयों में बढी हु आपकी अनुचित आकांक्षा को प्रशान्त करे ॥ ६२॥)

व्यस्तस्कन्धं विशीर्णप्रसवपरिकरं प्रत्तपत्रोपमर्दं
संयद्वर्षासु तर्षातुरखगपरिषत्पीतरक्तोदकासु ।
अक्षं रक्षस्तरूणामशनिवदशनैरापतन्मूर्ध्नि-मूर्ध्न
स्तादस्त्राधीशितुर्वः स्तबकितयशसे द्वेषिणां प्लोषणाय ॥ ६३॥

(अर्थ-अत्यन्त प्यास से आतुर पक्षि वृन्द जिस सङ्ग्राम की वर्षा में रक्त का ही जल पीते हैं । वहाँ पर राक्षस रूप वृक्षों के ऊपर मस्तकों पर बडे तीव्र वेग से वज्र के सदृश पडकर जो शाखा- प्रशाखा आदि अवयवों तथा पुष्प फल रूप गर्भ एवं परिवार और पत्र रूप वाहनों को विनष्ट कर देता है । वह अति शीघ्रगामी श्रीसुदर्शन देव का अक्ष, आपको विकशित कीर्ति देने

तथा शत्रु विनाश के लि सचेष्ट हो ॥ ६३॥)

दीक्षां सङ्गामसत्रे महति कृतवतो दीप्तिभिस्संहताभिः
जिह्वाले सप्तजिह्वे दनुजकुलहविर्जुह्वतो नेमिजुह्वा ।
वैकुण्ठास्त्रस्य कुण्डं महदिव विलसत्पिण्डिकावेदिमध्ये
दिश्याद्दिव्यर्द्धिदेश्यं पदमिह भवतामक्षतोन्मेषमक्षम् ॥ ६४॥

(अर्थ-महा सङ्ग्राम में दीक्षा लेकर, सप्त जिह्वा वाले अपनें ज्वाला समूहरूप अग्नि में, जो दानव वंश की हवि को नेमिरूप स्रुक द्वारा आहुति किया करता है । तथा श्रीसुदर्शन राज की नाभि रूप वेदिका में उत्तम यज्ञ कुण्ड की शोभा प्राप्त करता है । इस प्रकार सर्वदा प्रकाश शील वह सुदर्शन भगवान् का अक्ष आपके लि इस लोक में भी स्वर्ग के तुल्य सुख प्रद उत्तम पद प्रदान करे ॥ ६४॥)

तुङ्गाद्वोरद्रिशङ्गाद्दनुजविजयिनः स्पष्टदानोद्यमानां
शत्रुस्तम्बेरमाणं शिरसि निपततः स्रस्तमुक्तास्थिपुञ्जे ।
रक्तैरभ्यक्तमूर्तेर्विदलनगलितैर्व्यक्तवीरायितर्द्धे-
र्हर्यक्षस्यारिभङ्गं जनयतु जगतामीडितं क्रीडितं वः ॥ ६५॥

(अर्थ-दानव वंश विजयी भगवान् के उन्मत्त भुजदण्ड रूप पर्वत के शिखर से निकल कर, मद चूते रहने वाले जिनके मस्तक से अस्थिरूप मुक्ता मालायें खिसक पडती हैं, उन शत्रु रूप मत्त गजेन्द्रों के शिर पर गिरकर जो उन्हें फाड देता है और तब उनकी रक्त धारां से रङ्गी हु अपनी मूर्ति द्वारा वीर शोभा को व्यक्त करता हुआ, समस्त विश्व से वन्द्य श्रीक्षराज की वीर क्रीडा, आपके शत्रुदल का विनाश करे ॥ ६५॥)

उन्मीलत्पद्मरागं कटकमिव धृतं बाहुना यन्मुरारे-
र्दीप्तान् रश्मीन्दधानं नयनमिव यदुत्तारकं विष्टपस्य ।
चक्रेशार्कस्य यद्वापरिधिरभिदधद्दैत्यहत्यामिव द्रा-
गक्षं पक्षे पतित्वा परिघटयतु वस्तद्दृढिष्ठां प्रतिष्ठाम् ॥ ६६॥

(अर्थ-जो प्रदीप्त किरणों को धारण करता हुआ, भगवान् के हाथों द्वारा प्रकाशमान पद्मराग मणि से खचित कप्रण के समान धारण किया जाता है । तथा संसार के उद्धारक प्रधान उपाय रूप से स्वीकृत है । जो दैत्य दानवों की हिंसा को सुस्पष्ट रूप से प्रतिपादन करता हुआ चक्र रूप सूर्य की परिधि की तरह विराजता रहता है । श्रीचक्रेश का वह अक्ष आपका पक्षपाती बन सुस्थायी प्रतिष्ठा अतिशीघ्र सम्पन्न करे ॥ ६६॥)

क्रीडत्प्राक्क्रोडदंष्ट्राहतिदलितहिरण्याक्षवक्षःकवाट-
प्रादुर्भूतप्रभूतक्षतजसमुदितारुण्यमुद्रं समुद्रम् ॥

उन्मीलत्किंशुकाभैरुपहसदमितैरंशुभिः संशयघ्नी-
मक्षं चक्रस्य दत्तामघशतशमनं दाशुषीं शेमुषीं वः ॥ ६७॥

(अर्थ-आदि पुरुष श्रीवाराह भगवान् के दन्त प्रहार की क्रीडा द्वारा विदीर्ण हिरण्याक्ष के वक्षस्थल से निकली हु रुधिर धारा की लालिमा से रक्तिम वर्ण के हो गये समुद्र को खिले हु पलास पुष्प के समान अपनी असङ्ख्य किरणों द्वारा जो परिहास किया करता है । वह सैकडों पापों का शमन करने वाला, श्रीचक्रराज का अक्ष आपके लि दान स्वभाव सम्पन्न तथा संशय दूर करने वाली विशुद्ध बुद्धि प्रदान करें ॥ ६७॥)

पद्मोल्लासप्रदं यज्ज्ञनयति जगतीमेधमानप्रबोधां
यस्यच्छायासमाना लसति परिसरे रोहिणी तारकाग्र्या ।
नानाहेत्युन्नतत्त्वं प्रकटयति च यत्प्राप्तकृष्णप्रयाणं
त्रेधा भिन्नस्य धाम्नस्समुदय इव तत्पातु वश्चाक्रमक्षम् ॥ ६८॥

(अर्थ-जो लक्ष्मी जी तथा भक्त वर्ग के मानस कमल को फ्रुल्लित एवं जगत् की चेतना को समृद्ध बनाता है । जिसके समीप में चन्द्रमा की पत्नी तारां में श्रेष्ठ रोहिणी छाया के समान हो जाती है । जो श्रीकृष्ण के गमन की सूचना देता है, या जिससे हतप्रभ हो अग्निदेव भी कृष्णवर्त्मा नाम चरितार्थ करते हैं । जो शार्ङ्ग प्रभृति अनेक आयुधों की अपेक्षा अधिक महत्त्व- शाली है । इस प्रकार सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि में विभक्त तेज राशि भूत तेज पुञ्ज वह चक्रराज का अक्ष आप सबका रक्षण करे ॥ ६८॥)

शोचिर्भिः पद्मरागद्रवसमसुषमैश्शोभमानावकाशं
प्रत्यग्राशोकरागप्रतिभटवपुषा भूषितं पूरुषेण ।
अन्तः स्वच्छन्दमग्नोत्थितभृगुतनयं क्षत्रियाणां क्षताना-
मारब्धं शोणितौघैस्सर इव भवतो दिव्यहेत्यक्षमव्यात् ॥ ६९॥

(अर्थ-द्रवीभूत पद्मराग मणि के रस के समान शोभायमान किरणों द्वारा रक्त वर्ण की शोभा से सम्पन्न मध्य प्रदेश वाला तथा फ्रुल्ल अशोक पुष्प के रङ्ग को हतप्रभ कर देने वाले रक्त विग्रह धारी श्रीसुदर्शन पुरुष से जो विभूषित रहता है । तथा युद्ध में काटे गये क्षत्रियों के रक्त प्रवाह से परिपूर्ण, वह सरोवर जिसमें स्नान के अनन्तर श्रीपरशुराम जी उठ रहे हों, उसके सदृश प्रतीत होने वाला वह श्रीसुदर्शन जी का अक्ष आप सबकी रक्षा करे ॥ ६९॥)

मत्तानामिन्द्रियाणां कृतविषयमहाकाननक्रीडनानां
सृष्टं चक्रेश्वरेण ग्रहणधिषणया वारिवद्वारणानाम् ।
गम्भीरं यन्त्रगर्तं कमपि कृतधियो मन्वते यत्प्रदेया-
दस्थूलां संविदं वस्त्रिजगदभिमतस्थूललक्षं तदक्षम् ॥ ७०॥

(अर्थ-विवेक सम्पन्न ज्ञानी लोग जिसे विषय वासना के जङ्गल में विहार करने वाले मत्त गजेन्द्र के सदृश इन्द्रिय वर्ग के नियमन करने के लिये, श्रीचक्रराज द्वारा निर्मित गजबन्धक गर्त के रूप में एक गम्भीर यन्त्र गर्त समझते हैं । तथा तीनो लोक की अभीष्ट वस्तु प्रदान करने में जो समर्थ हैं, वह श्रीसुदर्शन भगवान् का अक्ष आपके लिये विवेक वाली सूक्ष्म प्रतिभा प्रदान करे ॥ ७०॥)

प्रणादीन्सन्नियम्य प्रणिहितमनसां योगिनामन्तरङ्गे
तुङ्गं सङ्कोच्य रूपं विरचितदहराकाशकृच्छ्रासिकेन ।
प्राप्तं यत्पूरुषेण स्वमहिमसदृशं धाम कामप्रदं वो
भूयाभूर्भुवस्स्वस्त्रयवरिवसितं पुष्कराक्षायुधाक्षम् ॥ ७१॥

(अर्थ-योग आदि के पद्धति से, प्राण आदि वायु का नियन्त्रण कर समाहित मन वाले योगियों के अन्तःकरण में विराजने के लिये जिन्हें अपना विराट स्वरूप सङ्कुचित कर लेना पडता है । अतः वे ही सुदर्शन भगवान् अपने स्वरूपानुकूल जिस अक्ष को अपना अधिष्ठान बनाये हैं, और जो भूः-भुवः तथा स्वः इन तीनो लोकों से अभिवन्दित होता है वह श्रीचक्रराज का अक्ष आपकी कामना सफल करे ॥ ७१॥)

विद्धान्वीध्रेण धाम्ना चरणनखभुवा बद्धवासस्य मध्ये
चक्राध्यक्षस्य बिभ्रत्परिहसितजपापुष्पकोशान्प्रकाशान् ।
शुभ्रैरभ्रैरदभ्रैश्शरदि तत इतो व्योम विभ्राजमानं
प्रातस्त्यादित्यरोचिस्ततमिव भवतः पातु राथाङ्गमक्षम् ॥ ७२॥

(अर्थ-के मध्य प्रदेश में विराजमान एवं श्रीसुदर्शन पुरुष के चरण नख से निकलने वाली निर्मल कान्ति द्वारा जो सर्वदा सुशोभित रहता है । तथा जपा पुष्प के सौन्दर्य को तिरस्कृत करके उत्तम प्रकाश धारण करता हुआ, शुभ्र वर्ण की विविध मेघमालां से संयुक्त और प्रातः कलीन सूर्य की किरणों से व्याप्त होकर जो चमकते हु आकाश के सदृश प्रतीत हुआ करता है वह

सुदर्शन भगवान् का अक्ष आपकी रक्षा करे ॥ ७२॥)

श्रीवाणीवाङ्मृडान्यो विदधति भजनं शक्तयो यस्य दिक्षु
प्राह व्यूहं यदाद्यं प्रथममपि गुणं भारती पाञ्चरात्री ।
घोरां शान्तां च मूर्तिं प्रथयति पुरुषः प्राक्तनः प्रार्थनाभि-
र्भक्तानां यस्य मध्ये दिशतु तदनघामक्षमध्यक्षतां वः ॥ ७३॥

(अर्थ-पाञ्चरात्र शास्त्र जिसको वासुदेव, सङ्कर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध स्वरूप बतलाता है, एवं ज्ञान गुण प्रधान प्रतिपादन करता है । भगवान् के आदि व्यूहरूप वासुदेव आदि की क्रमशःश्री, वाणी, वाक् और मृडानी ये चार शक्तियां चारो दिशां में जिस व्यूहात्मक अक्ष की सेवा किया करती है । तथा जिसके मध्य में विराजमान होकर श्रीसुदर्शन भगवान् भक्तों की प्रार्थनां द्वारा सुप्रसन्न हो प्रसङ्गानुकूल उनके लिये उग्र और प्रसन्न विग्रह धारण कर अभीष्ट पूर्ण किया करते हैं । वह भगवान् का अक्ष आपको दोष रहित आधिपत्य पद प्रदान करे ॥ ७३॥)

रक्षःपक्षेण रक्षत्क्षतममरगणं लक्ष्यवैलक्ष्यमाजौ
लक्ष्मीमक्षीयमाणां बलमथनभुजे वज्रशिक्षानपेक्षे ।
निक्षिप्य क्षिप्रमध्यक्षयति जगति यद्दक्षतां दिव्यहेते-
रक्षामामक्षमां तां क्षपयतु भवतामक्षजिल्लक्ष्यमक्षम् ॥ ७४॥

(अर्थ-समराङ्गण में राक्षसों के सैन्य से पराजित होने के कारण सलज्ज देवगण की जो रक्षा किया करता है । तथा वज्र सञ्चालन की कला से अनभिज्ञ देवेन्द्र के भुजदण्डों में अति शीघ्रता से अपरिमित ऐश्वर्य डाल कर लोक में जो अपने अद्भुत सामर्थ्य का प्रकाशन किया करता है एवं संयम नियमशील पुरुषों के ध्यान का जो एक मात्र लक्ष्य है । वह दिव्य अक्ष आपकी बडी से बडी अशान्ती को विनष्ट करे ॥ ७४॥)
॥ इत्यक्षवर्णनम् ॥

अथसुदर्शनपुरुषवर्णनम्
ज्योतिश्चूडालमौलिस्त्रिनयनवदनः षोडशोत्तुङ्गबाहुः
प्रत्यालीढेन तिष्ठन्प्रणवशशधराधारषट्कोणवर्ती ।
निस्सीमेन स्वधाम्ना निखिलमपि जगत्क्षेमवन्निर्मिमाणो
भूयात्सौदर्शनो वः प्रतिभटपरुषः पूरुषः पौरुषाय ॥ ७५॥

(अर्थ-जिसका मस्तक ज्वाला रूप जटां से सुशोभित रहा करता है तथा जिसके तीन नेत्र और सोलह विशाल भुजायें हैं । जो अति दर्शनीय मुद्रा में विराजता हुआ प्रणव और चन्द्रमा को आधार बनाने वाले षट्कोण में निवाश करता है । एवं अपने असीम प्रताप से जगत् का कल्याण सम्पादन करता हुआ शत्रु वर्ग के प्रति अति भयङ्कर हो जाया करता है । वह सुदर्शनचक्र मध्यवर्ती दिव्य पुरुष आपको पुरुषत्व प्रदान करे ॥ ७५॥)

वाणी पौराणिकी यं प्रथयति महितं प्रेक्षणं कैटभारेः
शक्तिर्यस्येषुदंष्ट्रानखपरशुमुखव्यापिनी तद्विभूत्याम् ।
कर्तुं यत्तत्त्वबोधो न निशितमतिभिर्नारदाद्यैश्च शक्यो
दैवी वो मानुषीं च क्षिपतु स विपदं दुस्रामस्त्रराजः ॥ ७६॥

(अर्थ-वेद पुराण आदि जिसे भगवान् का प्रशस्त सङ्कल्प स्वरूप प्रतिपादन करते हैं । तथा जिसकी शक्ति भगवान् के राम-वाराह-नृसिंह-परशुराम आदि विभव रूपों के इषु, दंष्ट्रा, नख और परशु प्रभृति आयुधों में व्याप्त है । एवं जिसके सात्त्विक स्वरूप को सूक्ष्म बुद्धि वाले नारद प्रभृति महर्षि गण भी नहीं जान पाते । वह सुदर्शन पुरुष आपकी दुस्तर दैवी तथा मनुषी आपत्तियों को नष्ट करे ॥ ७६॥)

रूढस्तारालवाले रुचिरदलचयः श्यामलैश्शस्त्रजालै-

ज्वालाभिस्सप्रवालः प्रकटितकुसुमो बद्धसङ्गैः स्फुलिङ्गैः ।
प्राप्तानां पादमूलं प्रकृतिमधुरया छायया तापहृद्वो
दत्तामुद्वोःप्रकाण्डः फलमभिलषितं विष्णुसङ्कल्पवृक्षः ॥ ७७॥

(अर्थ - जो प्राणवरूप क्यारी में प्रकट हुआ है तथा कुन्त-कृपाण आदि शस्त्र समूह सुन्दर-सुन्दर पत्ते और रक्त वर्ण की ज्वाला कोमल-कोमल किसलय कल्ले हैं । अग्नि के स्फुलिङ्ग जिसके पुष्प एवं उच्च भुजदण्ड ही स्कन्ध हैं । जो अपने चरण के आश्रित प्राणियों के ताप प्रशान्त करता रहता है । इस प्रकार भगवान् विष्णु का सङ्कल्प स्वरूप वह श्री सुदर्शन रूप वृक्ष आपके लि अभीष्ट अमृतमय फल प्रदान करे ॥ ७७॥)

धाम्नामैरम्मदानां निचयमिव चिरस्थायिनां द्वादशानां
मार्तण्डानां समूढं मह इव बहुलां रत्नभासामिवर्द्धिम् ।
अर्चिस्सङ्घातमेकीकृतमिव शिखिनां वाडवाग्रेसराणां
शङ्कन्ते यस्य रूपं स भवतु भवतां तेजसे चक्रराजः ॥ ७८॥

(अर्थ-जिसके स्वरूप के विषय में दर्शक गण यह विकल्प किया करते हें कि क्या यह अधिक काल तक स्थिर रहने वाली विद्युत तेज का पुञ्ज है अथवा द्वादश सूर्यों का एकत्रित तेज समूह है या रत्न प्रभां की अति विशिष्ट समृद्धि है । अथवा वडवानल की अपेक्षा अधिक तेजस्वी अग्नि ज्वालां का सामूहिक तेज पुञ्ज है इस तरह के अनेक विकल्पों का विषय वह चक्रराज सुदर्शन सर्वत्र आपके तेज का विस्तार करे ॥ ७८॥)

उग्रं पश्याक्षमुद्यद्भ्रुकुटि समुकुटं कुण्डलिस्पष्टदंष्ट्रं
चण्डास्त्रैर्बाहुदण्डैर्लसदनलसमक्षौमलक्ष्योरुकाण्डम् ।
प्रत्यालीढस्थपादं प्रथयतु भवतां पालनव्यग्रमग्रे
चक्रेशोऽकालकालेरितभटविकटाटोपलोपाय रूपम् ॥ ७९॥

(अर्थ-जिनके नेत्र अत्यन्त भयङ्कर तथा भ्रकुटी अतीव उग्र है । मुकुट और कुण्डल धारण किये रहते हैं । बडे-बडे दान्त हैं और भुजदण्डों में प्रलय मचा देने वाले अस्त्र सर्वदा धारण किये रहते हैं । जो ऊरु भाग तक अग्नि ज्वाला के सदृश धौतवस्त्र पहने हु अपने आसन पर एक विलक्षण ढङ्ग से बैठ कर जगत् की रक्षा के लि सतर्क रहर करते हैं । ऐसे श्रीचक्रराज सुदर्शन अकाल में प्रेरित यमराज के दूतों के गर्व को विनष्ट करने के लि अपने उक्त दिव्य स्वरूप को आपके समक्ष प्रकट करे ॥ ७९॥)

चक्रं कुन्तं कृपाणं परशुहुतवहावङ्कुशं दण्डशक्ती
शङ्खं कोदण्डपाशौ हलमुसलगदावज्रशूलांश्च हेतीन् ।
दोर्भिस्सव्यापसव्यैर्दधततुलबलस्तम्भितारातिदर्पै-
र्व्यूहस्तेजोभिमानी नरकविजयिनो जृम्भतां सम्पदे वः ॥ ८०॥

(अर्थ-नरकासुर विजयी भगवान् के तेज के विशिष्ट व्यूह अवतार अपने असीम बल से शत्रुवर्ग के दर्प को विनष्ट कर देने वाले अपनेदक्षिण और वाम सोलहों हाथों में क्रमशः चक्र, कुन्त, कृपाण, परशु, अग्निवाण, अङ्कुश, दण्ड, शक्ति, शङ्ख, धनुष, पाश, हल, मुसल, गदा, वज्र और शूल नामक आयुधों को धारण करते हु भगवान् श्रीसुदर्शन पुरुष आपको सम्पत्ति प्रदान करने के लि अभिव्यक्त हों ॥ ८०॥

पीतं केशे रिपोरप्यसृजि रथपदे संश्रितेऽप्युत्कटाक्षं
चन्द्राधःकारि यन्त्रे वपुषि च दलने मण्डले च स्वराङ्कम् ।
हस्ते वक्त्रे च हेतिस्तबकितमसमं लोचने मोचने च
स्तादस्तोकाय धाम्ने सुरवरपरिषत्सेवितं दैवतं वः ॥ ८१॥

(अर्थ-केश और शत्रु शोणित के विषय में जिनमें पीत गुण हैं, अर्थात् केश पीत वर्ण के और शत्रु शोणित भी पी लेते हैं । रथ

चरण और संश्रित व्यक्ति के विषय में जिनके अक्ष नेत्र अति उत्कट
और उदार हैं । जिनके यन्त्र और शरीर से चन्द्रमा भी तिरस्कृत
रहता है । तथा जिनके शत्रु दलन और मण्डल में स्वर निर्घोष
एवं प्रणव का अङ्क है । जिनके हस्त और मुख में आयुधों तथा
ज्वालां के स्तवक गुच्छे हैं और नेत्र तथा शत्रुमोचन असमान
हैं । इस प्रकार देवगण से सुसेवित श्रीसुदर्शन पुरुष आपको
प्रकृष्ट तेज प्रदान करेम् ॥ ८१॥)

चित्राकारैस्स्वचारैर्मितसकलजगज्जागरूकप्रतापो
मन्त्रं तन्त्रानुरूपं मनसि कलयतो मानयन्नात्मगुह्यान् ।
पञ्चाङ्गस्फूर्तिनिर्वर्तितरिपुविजयो धाम षण्णां गुणानां
लक्ष्मीं राजासनस्थो वितरतु भवतां पूरुषश्चक्रवर्ती ॥ ८२॥

(अर्थ-जो अपने विविध स्वरूप के परिभ्रमण द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड
को माप लिये हैं । जिनका प्रताप देदीप्यमान है । पाञ्चरात्र तन्त्र
के अनुसार सुदर्शन के मन्त्र को अपने हृदय में सङ्कलन करते
हु एवं अपने रहस्य से अपने भक्तवर्ग को सम्मानित करते हु, जो
अपने पञ्चाङ्ग न्यास सम्पत्ति द्वारा शत्रुदल पर विजय प्राप्त किया
करते हैं । जो ज्ञान-शक्ति आदि षट्गुणों के अधिष्ठान हैं । ऐसे
चन्द्र मण्डल के सिंहासन पर विराजमान चक्रवर्ती श्रीसुदर्शन
राज आपके लि लक्ष्मी वितरण करें ॥ ८२॥)

अक्षावृत्ताभ्रमालान्यरविवरलुठच्चन्द्रचण्डद्युतीनि
ज्वालाजालावलीढस्फुटदुडुपटलीपाण्डुदिङ्मण्डलानि ।
चक्रान्ताक्रान्तचक्राचलचलितमहीचक्रवालार्तशेषा-
ण्यस्त्रग्रामाग्रिमस्य प्रददतु भवतां प्रार्थितं प्रस्थितानि ॥ ८३॥

(अर्थ-जिसके अक्ष में मेघ मालायें इधर-उधर बार-बार आवर्तन
किया करती हैं । तथा आरों के मध्य प्रदेश में चन्द्र और सूर्य
लुण्ठन करते रहते हैं । एवं जिसके ज्वाला समूह से हतप्रभ,
और छिन्न-भिन्न, नक्षत्र मण्डल की कान्ति से दिशायें धवल
वर्ण की प्रतीत हुआ करती हैं । इसी प्रकार जिनके प्रयाण काल में
चक्र की नेमि द्वारा लोकालोक पर्वत के आक्रान्त हो जाने से भू-मण्डल
कम्पित हाने लगता तथा शेष को भी वेदना का अनुभव होने लगता
है । एवं भय अस्त्र समूह शिरोमणि चक्रराज श्रीसुदर्शन भगवान्
के प्रयाण आपका अभिलषित अर्थ प्रदान करें ॥ ८३॥)

शूलं त्यक्तात्मशीलं सृणिरणुकघृणिः पट्टसः स्पष्टसादः
शक्तिश्शालीनशक्तिः कुलिशमकुशलं कुण्ठधारः कुठारः ।
दण्डश्चण्डत्वशून्यो भवति तनुधनुर्यत्पुरस्तात्स वः स्ताद्
ग्रस्ताशेषास्त्रगर्वो रथचरणपतिः कर्मणे शार्मणाय ॥ ८४॥

(अर्थ-जिन दिव्य पुरुष के समक्ष शङ्कर का शूल शत्रु विनाश
की प्रवीणता रूप अपने स्वभाव को त्याग देता है, एवं इसी प्रकार
अग्निदेव के अङ्कुश की किरणें विनष्ट और वायु देव का पट्टस नामक
आयुध भी छिन्न-भिन्न हो जाता है । श्रीकार्तिकेय की शक्ति का धैर्य
समाप्त और इन्द्र के वज्र की भी कुशलता अस्तङ्गत हो उठती है ।
गणेश का कुठार कुण्ठधार, तथा यमदण्ड भी अपनी क्रूरता से
रहित, और रुद्र का धनुष भी क्षीण हो जाया करता है । इस तरह
सभी अस्त्रों के गर्व को खण्डित करने वाले श्रीचक्रराज सुदर्शन
पुरुष आपके कल्याण कारक कार्य में सर्वदा सतर्क रहें ॥ ८४॥)

क्षुण्णाजानेयवृन्दं क्षुभितरथगणं सन्नसान्नाह्ययूथं
क्ष्वेलासंरम्भहेलाकलकलविगलत्पूर्वगीर्वाणगर्वम् ।
कुर्वाणःसाम्परायं रथचरणपतिः स्थेयसीं वःप्रशस्तिं
दुग्धां दुग्धाब्धिभासं भयविवशशुनासीरनासीरवर्ती ॥ ८५॥

(अर्थ-जो भयाक्रान्त इन्द्र के विजययार्थ सेनापति का पद ग्रहण
करते हैं तथा युद्ध में अच्छे-अच्छे घोडे चूर्ण विचूर्ण हो जाते

और रथ पङ्क्तियाँ जर्जरित हो जातीं एवं बडे-बडे मत्त गजेन्द्र, तहस नहस हो जाया करते हैं । जह पर विजय निमित्तक हर्ष के कोलाहल की क्रीडा में दैत्य वर्ग का गर्व खण्डित एवं विलीन हो जाता है । ऐसे भयङ्कर युद्ध को करने वाले श्रीचक्रराज सुदर्शन पुरुष आपको क्षीर समुद्र के सदृश धवल एवं सुस्थिर कीर्ति से परिपूर्ण करें ॥ ८५॥)

द्वह्यद्वोश्शालिमालिप्रहरणरभसोत्तानिते वैनतेये
विद्राति द्राक्प्रयुक्तः प्रधनभुवि परावर्तमानेन भर्त्रा ।
निर्जित्य प्रत्यनीकं निरवधिकचरद्धास्तिकाश्वीयरथ्यं
पथ्यं विश्वस्य दाश्वान्प्रथयतु भवतो हेतिरिन्द्रानुजस्य ॥ ८६॥

(अर्थ-शत्रु संहार में विलक्षण सामर्थ्य वाले भुजदण्डो से सम्पन्न माली नामक दैत्य के गदा आदि के प्रहार से जर्जरित होने पर जब गरुड जी अतिशीघ्र रण स्थल से विमुख हाने लगे, तो भगवान् फिर उन्हें लौटाकर और जिन श्रीसुदशर्न पुरुष को नियुक्त कर उनके द्वारा असङ्ख्य हाथी घोडे तथा रथों से व्याप्त शत्रु सैन्य पर विजय दिलाये, एवं विश्व का कल्याण किये हैं । वे चक्राधीश श्रीसुदर्शन राज आपको प्रख्यात करें ॥ ८६॥)

नन्दिन्यानन्दशून्ये गलति गणपतौ व्याकुले बाहुलेये
चण्डे चाकित्यकुण्ठे प्रमथपरिषदि प्राप्तवत्यां प्रमाथम् ।
उच्छिद्याजौ बलिष्ठं वलिजभुजवनं यो ददावादिभिक्षो-
र्भिक्षां तत्प्राणरूपां स भवदकुशलं कृष्णहेतिःक्षिणोतु ॥ ८७॥

(अर्थ-जो युद्ध में नन्दीश्वर को निरानन्द करके गणेश को भगा दिये तथा कार्तिकेय को व्याकुल बना और चण्ड नामक प्रमथ को भी चकित तथा कुण्ठित कर दिये । इस प्रकार शङ्कर जी के समस्त प्रथमगण के अस्त व्यस्त हो जाने पर बलिपुत्र वाणासुर के भुज समूह रूप वन को भी काटकर जो आदि भिक्षुक श्रीशङ्कर जी को बाणासुर की प्राण भिक्षा देकर प्रसन्न कर दिये । वे चक्रेश श्रीसुदर्शन पुरुष आपके अमङ्गल की रक्षा करेम् ॥ ८७॥)

रक्तौघाभ्यक्तमुक्ताफललुलितललद्वीचिवृद्धौ महाब्धौ
सन्ध्यासम्बद्धताराजलधरशबलाकाशनीकाशकान्तौ ।
गम्भीरारम्भमम्भश्चरमसुरकुलं वेदविघ्नं विनिघ्नन्
निविघ्नं वः प्रसूतां व्यपगतविपदं सम्पदं चक्रराजः ॥ ८८॥

(अर्थ-शत्रुं के रक्त प्रवाह से रञ्जित मोतियों से विशिष्ट एवं चञ्चल लहरियों से परिपूर्ण वह महासमुद्र, जिसकी कान्ति, सायङ्कालीन मेघ तथा तारागण के मिश्रित रक्त, श्वेत वर्ण वाले आकाश मण्डल के सदृश प्रतीत हुआ करती है । उस समुद्र के जल में सञ्चरण स्वभाव वाले, वेद के अपहर्ता, भयङ्कर असुर कुल को, निर्विघ्न निर्मूल करने वाले श्रीचक्रराज सुदर्शन आपके लिये निरापद सम्पत्ति प्रदान करे ॥ ८८॥)

काशीविप्लोषचैद्यक्षपणधरणिजध्वंससूर्यापिधान-
ग्राहद्वेधात्वमालित्रुटनमुखकथावस्तुसत्कीर्तिगाथाः ।
गीयन्ते किन्नरीभिः कनकगिरिगुहागेहिनीभिर्यदीया
देयाद्दैतेयवैरी स सकलभुवनश्लाघनीयां श्रियं वः ॥ ८९॥

(अर्थ-काशीपुरी का जलाना, शिशुपाल का शिरच्छेदन तथा नरकासुर का वध एवं जयद्रथ वध के समय सूर्य का आच्छादन और ग्राह के शरीर का काटना, माली राक्षस का भञ्जन आदि जिनकी विशेष कीर्ति कथां को सुमेरु पर्वत की कन्दरां में रहने वाली देवाँगनायें गाया करती हैं । वे दानव संहार कर्ता श्रीसुदर्शन पुरुष आपके लि सकल लोक प्रशस्य सम्पत्ति प्रदान करें ॥ ८९॥)

नानावर्णान्विवृण्वन्विरचितभुवनानुग्रहान् विग्रहान् यः

चक्रेष्वष्टासु मृष्टासुरवरतरुणीकण्ठकस्तूरिकेषु
। आतारादर्णमालावधिषु वसति यः पूरुषो वस्स देयात्
व्यध्वैरुद्धूतसत्त्वैरुपहितमबहिर्ध्वान्तमध्वान्तवर्ती ॥

९०॥ (अर्थ-जो सुदर्शन पुरुष श्रेष्ठ असुरों की स्त्रियों को कण्ठाभरण कस्तूरी चूर्ण से शून्य बना देते हैं । एवं प्रणव से मातृका अक्षर पङ्क्ति पर्यन्त अष्टचक्रों में अनेक प्रकार के वर्ण वाले संसार के अनुग्रह के लि विविध स्वरूप को प्रकट करते हु भक्तों के लि निश्चित कल्याण का मार्ग प्रदर्शन करते रहते हैं । वे सुदर्शन भगवान् अवैदिक मार्ग के संसर्ग से आये हु, आपके अन्तर अज्ञान को नष्ट करेम् ॥ ९०॥)

द्वात्रिंशत्षोडशाष्टप्रभृतिपृथुभुजस्फूर्तिर्भिमूर्तिभेदैः
कालाद्ये चक्रषट्के प्रकटितविभवःपञ्चकृत्यानुरूपम् ।
अर्थानामर्थितानामहरहरखिलं निर्विलम्बैर्विलम्बैः
कुर्वाणो भक्तवर्गं कुशलिनमवतादायुधग्रामणीर्वः ॥ ९१॥

(अर्थ - जो बत्तीस सोलह एवं आठ आदि मांसल भुजा वाले दिव्य स्वरूपों से काल, प्रकृति, पुरुष, महत् और अहङ्कार तथा जगत् आदि षट्चक्रों में लोक के तिरो भाव -सृष्टि-स्थिति-संहार एवं अनुग्रह इन पाञ्च रूपों को धारण कर अपने वैभव को प्रकट करते हैं । जो प्रार्थियों को अतिशीघ्र अभीष्ट प्रदान कर सभी भक्तों को निरन्तर सुखी रखते हैं । वे सुदर्शन पुरुष आपकी रक्षा करें ॥ ९१॥)

कोणैरर्णैस्सरोजैरपि कपिशगुणैः षड्भिरुद्भिन्नशोभे
श्रीवाणीपूर्विकाभिर्दधति विकसतश्शक्तिभिः केशवादीन् ।
तारान्ते भूपुरादौ रथचरणगदाशार्ङ्गखड्गाङ्किताशे
यन्त्रे तन्त्रोदिते वः स्फुरतु कृतपदं लक्ष्म लक्ष्मीसखस्य ॥ ९२॥

(अर्थ-जो पिङ्गल वर्ण के षट्कोण, अक्षर और षट् पद्मों से सुशोभित रहते हैं । जिसके आदि में भू-विम्ब तथा अन्त में प्रणव विराजता है जिसकी पूर्व आदि दिशां में चक्र, कौमोदकी गदा, शार्ङ्ग धनुष और नन्दक खड्ग अङ्कित है । जो श्री, वाणी, वाक्, तथा मृडानी आदि शक्तियों से सुशोभित होते हु केशन आदि द्वादश व्यूह मूर्तियों को धारण करते एवं पाञ्चरात्र आगम में कहे गये यन्त्र स्वरूप में विराजमान रहते हैं । श्रीविष्णु भगवान् के प्रधान चिह्नभूत वे श्रीसुदर्शन पुरुष आपको दर्शन देने के लिये प्रकट होवेम् ॥ ९२॥)

दंष्ट्राकान्त्या कडारे कपटकिटितनोः कैटभारेरधस्ता-
दूर्ध्वं हासेन विद्धे नरहरिवपुषो मण्डले वासवीये ।
प्राक्प्रत्यक्सान्ध्यसान्द्रच्छविभरभरिते व्योम्नि विद्योतमानो
दैतेयोत्पातशंसी रविरिव रहयत्वस्त्रराजो रुजं वः ॥ ९३॥

(अर्थ - पूर्व कथित यन्त्र का अधोभाग श्रीवराह भगवान् की दन्त कान्ति के संसर्ग से पिङ्गल वर्ण का है और ऊर्ध्व भाग श्रीनृसिंह भगवान् के हास्य प्रकाश से धवल वर्ण का, तथा जो इन्द्र ममण्डल में विराजते हु प्रातः सायं कालीन सघन कान्ति पुञ्ज से व्याप्त आकाश मण्डल में दैत्यों के विनाश की सूचना देने वाले श्रीसूर्य देव के सदृश प्रकाशमान रहते हैं । वे सुदर्शन आपके दृष्टादृष्ट प्रतिबन्धक रोगों को विनष्ट करेम् ॥ ९३॥)

कोणे क्वापि स्थितोऽपि त्रिभुवनविततश्चन्द्रधामापि रूक्षो
रुक्मच्छायोऽपि कृष्णाकृतिरनलमयोऽप्याश्रितत्राणकारी ।
धारासारोऽपि दीप्तो दिनकररुचिरोऽप्युल्लसत्तारकश्री-
श्चक्रेशश्चित्रभूमा वितरतु विमतत्रासनं शासनं वः ॥ ९४॥

(अर्थ-जो यन्त्र के एक कोण में रहते हु भी त्रिलोक में व्याप्त

हैं । स्वर्ण कान्ति होने पर भी कृष्ण विग्रहवान हैं । अग्निवर्ण होने पर भी भक्त रक्षक हैं । जलधारा रूप होकर भी अत्यन्त प्रदीप्त रहते हैं । जो सूर्य कान्ति होकर भी तारक प्रणव की छवि धारण करते हैं । इस प्रकार परस्पर विरुद्ध धर्मों के आश्रय श्रीचक्रराज सुदर्शन आपके लि शत्रु सन्त्रासक शासकत्व प्रदान करेम् ॥ ९४॥)

शुक्लश्शक्र स्तवस्ते सह दहन कलां काल तेऽयं न कालः
किं वो रक्षांसि रक्षा तव फलतु पते यादसां पादसेवा ।
वायो हृद्योऽसि भर्तुस्त्यज धनद मदं सेव्यतां त्रयम्बकेति
प्राहुर्यद्यन्त्रपालास्स दनुजविजयी हन्तु तन्द्रालुतां वः ॥ ९५॥

(अर्थ-श्रीसुदर्शन पुरुष के चरण सेवक उनके विषय में इस प्रकार की घोषणा करते रहते हैं कि हे इन्द्र तुम्हारी स्तुति अतिनिर्मल है । अग्निदेव तुम श्रीचक्रराज के दर्शन के लि, क्षणमात्र रुक जा हे काल अभी तुम्हारा समय नहीं हुआ है । ऐ राक्षसवृन्द तुम्हारी रक्षा किस काम की । वरुणदेव तुम्हारी पाद सेवा सफल है । हे वायुदेव तुम तो चक्रराज के अत्यन्त प्रिय पात्र हो । कुबेर तुम अपने धन का दुरभिमान मत करो । त्रिलोचन तुम श्रीचक्रराज की सेवा करो । इस प्रकार के दैत्यकुल विजेता श्रीचक्रराज सुदर्शन आपके जाड्य तथा आलस्य को विनष्ट करें ॥ ९५॥)

गायत्र्यर्णारचक्रे प्रथममनुसखस्स्मेरपत्रारविन्दे
बिम्बं वह्नेस्त्रिकोणं वहति जयिजयाद्यष्टशक्तौ निषण्णा ।
शोकं वोऽशोकमूले पदसविधलसद्भीमभीमाक्षभीमा-
पुंसो दिव्यास्त्रधामा पुरुषहरिमयी मूर्तिरस्यत्वपूर्वा ॥ ९६॥

(अर्थ-जहाँ पर आदि व्यूह श्रीवासुदेव के द्वादशाक्षर मन्त्र के, सखारूप, फ्रुल्ल द्वादश पत्रात्मक कमल में, अग्नि के त्रिकोण बिम्ब,कर्णिका के स्थान में विराजमान है । तथा जयिनी, जया, मोहिनी, ह्लादिनी, अजिता, माया, अपराजिता और सिद्धि इन आठ शक्तियों से जो सम्पन्न हैं, और गायत्री के चौबीस अक्षर जिनके अर के सदृश हैं । वहाँ पर अशोक वृक्ष के मूल भाग में बैठकर अपने चरण के समीपस्थ भीम और भीमाक्ष संज्ञक दो भयङ्कर पुरुषों से जो अति उग्र आकार की प्रतीत होती है । श्रीचक्रराज में विराजमान भगवान् की अपूर्व नृसिंह रूप मूर्ति आपके शोक को दूर फेंक दें ॥ ९६॥)

पाश्चात्याशोकपुष्पप्रकरनिपतितैः प्राप्तरागं परागैः
सन्ध्यारोचिस्सगन्धैः स्वपदशशधरं प्रेक्ष्य तारानुषक्तम् ।
पद्मानाबद्धकोशानिव सुरनिवहैरञ्जलीन् कल्प्यमानां-
श्चक्राधीशोऽभिनन्दन्प्रदिशतु सदृशीमुत्तमश्लोकतां वः ॥ ९७॥

(अर्थ-यन्त्र के पृष्ठवर्ती अशोक वृक्ष के पुष्प समूह से गिरे हु सायङ्कालिक लालिमा के सदृश परागों द्वारा रक्तिम वर्ण हो गये एवं प्रणव से विशिष्ट अपने निवास स्थान चन्द्र मण्डल को देखकर देवतां द्वारा की ग, निबद्ध पद्म कोश की तरह प्रार्थनाञ्जलि का अभिनन्दन करते हु चक्राधीश पुरुष आप सबको लोकोत्तर यश प्रदान करें ॥ ९७॥)

रक्ताशोकस्य वेदस्य च विहितपदं प्राप्तशाखस्य मूले
चक्रैरस्त्रैस्तदाद्यैरपि महितचतुर्द्विश्चतुर्वाहुदण्डम् ।
आसीनं भासमानं स्थितमपि भयतस्त्रायतां तत्त्वमेकं
पश्चात्पूर्वत्र भागे स्फुटनरहरितामानुषं जानुषाद्वः ॥ ९८॥

(अर्थ-अनेक शाखा प्रशाखा युक्त रक्त अशोक तथा वेद के मूल भाग एवं प्रणव में जो निवास करने वाले हैं । जो सुदर्शन आदि चक्र तथा पाश, अङ्कुश, प्रभृति आयुधों को धारण करते हु

अपने चतुर्भुज तथा षोडश भुजा वाले दिव्य विग्रह से पूजित होते हैं । तथा ऊपर-नीचे के भाग में क्रमशः सिंह और मनुष्य के विशिष्ट स्वरूप में विराजकर प्रकाशित होने वाले श्रीनृसिंह एवं श्रीसुदर्शन रूप इन दोनों विग्रहों से विशिष्ट एकत्व स्वरूप श्रीचक्राधीश भगवान् जन्म-मरण के भय से आपका परित्राण करें ॥ ९८॥)

प्राणे दत्तप्रयाणे मुषितदिशि दृशि त्वक्तसारे शरीरे
मत्यां व्यामोहवत्यां सतमसि मनसि व्याहते व्याहृते च ।
चक्रान्तर्वर्ति मृत्युप्रतिभयमुभयाकारचित्रं पवित्रं
तेजस्तत्तिष्ठतां वस्त्रिदशकुलधनं त्रीक्षणं तीक्ष्णदंष्ट्रम् ॥ ९९॥

(अर्थ-प्राण प्रयाण के समय जब नेत्र की दर्शनशक्ति क्षीण हो जाती, तथा शरीर भी अत्यन्त परवश, एवं बुद्धि विभ्रान्त बन जाती है । चित्त अन्धकार में विलीन हो जाता, और वाणी भी स्खलित होने लगती है । तब उस समय, देव समूह की परम सम्पत्ति, तथा मृत्यु को भी भयभीत करने वाले, त्रिनेत्र, एवं तीक्ष्ण दाँत वाले श्रीनृसिंह और पुरुष, इन दोनों विग्रहों से विशिष्ट श्रीसुदर्शनचक्र में सञ्चरण शील वह दिव्य तेज आपके समक्ष अपने विशुद्ध रूप में प्रकट हों ॥ ९९॥

यस्मिन्विन्यस्य भारं विजयिनि जगतां जङ्गमस्थावराणां
लक्ष्मीनारायणाख्यं मिथुनमनुभवत्यत्युदारान्विहारान् ।
आरोग्यं भूतिमायुः कृतमिह बहुना यद्यदास्थापदं व-
स्तत्तत्सद्यः समस्तं दिशतु स पुरुषो दिव्यहेत्यक्षवर्ती ॥ १००॥

(अर्थ-श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान् का युगल विग्रह, स्थावर जङ्गम रूप समस्त विश्व की, रक्षा शिक्षा आदि के समस्त भारों को, जन विजेता श्रीसुदर्शन पुरुष पर निर्भर और स्वयं निश्चिन्त हो निरतिशय आनन्द विहार का अनुभव किया करता है । सुदर्शनचक्र मध्यवर्ती वे दिव्य पुरुष आपके लि आरोग्य ऐश्वर्य तथा आयुष्य प्रदान करें । सर्व शक्तिमान् उनके विषय में कहना पर्याप्त है, कि वे आपके समस्त अभीष्ट पदार्थों को नित्य प्रति तत्क्षण प्रदान करते रहें ॥ १००॥)

पद्यानां तत्त्वविद्याद्युमणिगिरिशविध्यङ्गसङ्ख्याधराणा-
मर्चिष्वङ्गेषु नेम्यादिषु च परमतः पुंसि षड्विंशतेश्च ।
सङ्घैः सौदर्शनं यः पठति कृतमिदं कूरनारायणेन -
स्तोत्रं निर्विष्टभोगो भजति स परमां चक्रसायुज्यलक्ष्मीम् ॥ १०१॥

(अर्थ-इस सतक के ज्वाला वर्णन में चैबीस, नेमि में चौदह, अर में बारह, तथा नाभि में ग्यारह और अक्ष में तेरह पद्यों द्वारा एवं इसके पश्चात् पुरुष वर्णन प्रसङ्ग में छब्बीस स्तुतियों के श्लोकों द्वारा श्रीक्रूरनारायण मुनि से प्रणीत इस सुदर्शन शतक नामक स्तोत्र का जो पाठ करते हैं वे इस लोक के समस्त सुखों को उपभोग कर लेने के पश्चात् चक्राधीश भगवान् के सायुज्य रूप मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैम् ॥ १०१॥)

॥ इति श्रीकूरनारायणमुनिप्रणीतं सुदर्शनशतकं समाप्तम् ॥

सद्धर्मामृतवर्षिणी हृदि सतां स्वानन्दसन्देशिनी
नित्यं नृत्यति यस्य वक्त्रकमले वाणी शुभा मञ्जुला ।
सोऽयं श्रीयुतदेवनायकमुनिर्देशे शुभे भारते
धर्माचार्यवरोऽनिशं विजयते कल्याणकल्पद्रुमः ॥ १॥

शाण्डिल्यवंशकलशाम्बुधिपूर्णचन्द्रं
श्रीवानशैलयतिराट्पदपद्मभृङ्गम् ।
श्रीवेङ्कटेशवरणाम्बुजसक्तचित्तं
श्रीदेवनायकगुरुं शरणं प्रपद्ये ॥ २॥

इति सुदर्शनशतकम् । श्रीरस्तु ।